॥ॐ॥

॥ॐ श्री परमात्मने नमः ॥

॥श्री गणेशाय नमः॥

लोक कल्याणकारी सूक्त संग्रह

विषय-सूची

गोसूक्त 3

गोष्ठसूक्त 5

धनान्नदान सूक्त..... 7

रोग निवारण सूक्त 10

औषधि सूक्त 12

दीर्घायुष्य सूक्त..... 17

ब्रह्मचारीसूक्त..... 20

मन्यु सूक्त..... 26

अभ्युदय सूक्त..... 30

मधुसूक्त..... 38

कृषिसूक्त 43

गृह महिमा सूक्त..... 45

विवाहसूक्त 47

गोसूक्त

अथर्ववेद १२।१

अथर्ववेद के चौथे काण्ड में वर्णित २१वें सूक्तको 'गोसूक्त' कहते हैं। इस सूक्तके ऋषि ब्रह्मा तथा देवता गौ हैं। वेदोंमें गायका महत्त्व अतुलनीय गायें हमारी भौतिक और आध्यात्मिक उन्नतिका प्रधान साधन हैं। इस सूक्त में वर्णन है की मनुष्य को धन, बल, अन्न और यश गौ से ही प्राप्त होता है। गौएँ घर की शोभा, परिवार को आरोग्यता प्रदान करने वाली हैं।

माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसादित्यानाममृतस्य नाभिः।
प्र नु वोचं चिकितुषे जनाय मा गमनागमदितिं वधिष्ट।

आ गावो अग्मन्नुत भद्रमक्रन्सीदन्तु गोष्ठे रणयन्त्वस्मे।
प्रजावतीः पुरुरूपा इह स्युरिन्द्राय पूर्वीरुषसो दुहानाः॥१॥

गाय रुद्रों की माता, वसुओं की पुत्री, अदिति पुत्रों की बहिन और घृतरूप अमृत का खजाना है; प्रत्येक विचारशील पुरुष को मैंने यही समझाया है कि निरपराध एवं अवध्य गौ का वध मत करो। गौएँ आ गयी हैं और उन्होंने हमारा कल्याण किया है। वे गोशाला में बैठे और हमें सुख दें। गोशाला में रह कर वह उत्तम बच्चोंसे युक्त बहुत रूपवाली हो जायँ और परमेश्वरके यजन के लिये उष:काल के पूर्व दूध प्रदान करेने वाली हों। ॥१॥

इन्द्रो यज्वने गृणते च शिक्षत उपेद् ददाति न स्वं मुषायति।
भूयोभूयो रयिमिदस्य वर्धयन्नभिने खिल्ये नि दधाति देवयुम्॥२॥

ईश्वर यज्ञकर्ता और सद उपदेश कर्ता को सत्य ज्ञान देता है। वह निश्चयपूर्वक धन इत्यादि प्रदान करता है और अपने अस्तित्व को प्रकट करता है। वह धन को अधिकाधिक बढ़ाता है और देवत्व प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले को निज स्थिर स्थान में धारण करता है ।। २ ।।

न ता नशन्ति न दभाति तस्करो नासामामित्रो व्यथिरा दधर्षति ।
देवांश्च याभिर्यजते ददाति च योगित्ताभिः सचते गोपतिः सह ॥ ३॥

वह यज्ञ की गौएँ, जिनसे देवोंका यज्ञ किया जाता है और दान दिया जाता है, नष्ट नहीं होतीं, चोर उनको चुरा नहीं सकता तथा इनको दुःख देने वाला शत्रु इन पर अपना अधिकार नहीं चला सकता। गोपालक उनके साथ चिरकाल तक रहता है ।। ३ ।।

न तो अर्वा रेणुककाटोऽश्नुते न संस्कृतत्रमुप यन्ति ता अभि।
उरुगायमभयं तस्य ता अनु गावो मर्तस्य वि चरन्ति यज्वनः।।४।।

अपने पाँवों से धूल उड़ा कर तेज भागने वाला घोड़ा इन गौओं की बराबरी नहीं कर सकता। ये गौएँ पाकादि संस्कार करने वाले के पास भी नहीं जातीं। वे गौएँ उस यज्ञकर्ता मनुष्य को बड़ी प्रशंसनीय निर्भयता में विचरती हैं४॥

गावो भगो गाव इन्द्रो म इच्छागावः सोमस्य प्रथमस्य भक्षः।
इमा या गावः स जनास इन्द्र इच्छामि हुदा मनसा चिदिन्द्रम् ॥५॥

गौएँ धन हैं, गौएँ प्रभु हैं, गौएँ पहले सोमरस का अन्न हैं, यह मैं जानता हूँ। ये जो गौएँ हैं, हे लोगो! वही इन्द्र है। हृदय से और मन से निश्चयपूर्वक मैं इन्द्र को प्राप्त करनेकी इच्छा करता हूँ ।। ५ ।।

यूयं गावो मेदयथा कृशं चिदश्रीरं चित्कृणुथा सुप्रतीकम्।
भद्रं गृहं कृणुथ भद्रवाचो बृहद्वो वय उच्यते सभासु ॥ ६ ॥

हे गौओं! तुम दुर्बल को भी पुष्टता प्रदान करती हो, निस्तेज को भी तेज प्रदान करती हो। उत्तम शब्दवाली गौ! घर को कल्याणरूप बनाती है, इसलिये सभाओं में तुम्हारा प्रभावशाली यश गाया जाता है॥६॥

प्रजावतीः सूयवसे रुशन्तीः शुद्धा अपः सुप्रपाणे पिबन्तीः ।
मा व स्तेन ईशत माघशंसः परि वो रुद्रस्य हेतिर्वृणक्तु ॥ ७॥

उत्तम बछड़ों वाली, उत्तम घास के लिये भ्रमण करने वाली, उत्तम जलस्थान से शुद्ध जल ग्रहण वाली गौओ! चोर और पापी तुम पर अधिकार न करें। तुम्हारी रक्षा रुद्र के शस्त्र से चारों ओर से हो ॥७॥

गोष्ठसूक्त

अथर्ववेद ३।१४

अथर्ववेदके तीसरे काण्ड का १४वां सूक्त गोष्ठ (गोशाला) सूक्त कहलाता है। इस सूक्तके ऋषि ब्रह्मा तथा प्रधान देवता गोष्ठदेवता हैं। इस सूक्त गौवों से प्रार्थना की गयी है की वे गोशाला में आकर सुखपूर्वक दीर्घकाल तक अपनी बहुत-सी संतति के साथ विराजमान रहें।

से वो गोष्ठेन सुषदा सं रय्या सं सुभूत्या।
अहर्जातस्य यन्नाम तेना वः सं सृजामसि॥ १॥

गौओं के लिये उत्तम, प्रशस्त और स्वच्छ गोशाला बनायी जाय। गौओं को अच्छा जल पीनेके लिये दिया जाय तथा गौओं से उत्तम सन्तान उत्पन्न कराने की दक्षता रखी जाय। गौओं से इतना स्नेह करना चाहिये कि जो भी अच्छा-से-अच्छा पदार्थ हो, वह उन्हें प्रदान दिया जाय। ।। १ ।।

सं वः सृजत्वर्यमा सं पूषा सं बृहस्पतिः।।
समिन्द्रो यो धनञ्जयो मयि पुष्यत यद्वसु ॥ २॥

अर्यमा, पूषा, बृहस्पति तथा धन प्राप्त कराने वाले इन्द्र आदि सब देवता गायों को पुष्ट करें तथा गौओं से जो पोषक रस (दूध) प्राप्त हो, वह मुझे पुष्टि प्रदान करने की लिए उपलब्ध हो ॥ २॥

संजग्माना अबिभ्युषीरस्मिन् गोष्ठे करीषिणीः ।
बिभ्रतीः सोम्यं मध्वनमीवा उपेतन ॥ ३॥

उत्तम खाद के रूप में गोबर तथा मधुर रस के रूप में दूध देने वाली स्वस्थ गायें इस उत्तम गोशाला में आकर निवास करें ।।३।।

इहैव गाव एतनेहो शकेव पुष्यत् ।
इहैवोत प्रजायध्वं मयि संज्ञानमस्तु वः ॥४॥

गौएँ इस गोशाला में आयें। यहाँ पुष्ट होकर उत्तम सन्तान उत्पन्न करें और गौओं के स्वामी के ऊपर प्रेम करती हुई आनन्द से निवास करें ॥४॥

शिवो वो गोष्ठो भवतु शारिशाकेब पुष्यते।
इहैवोत प्र जायध्वं मया वः सं सृजामसि॥५॥

यह गोशाला गौओं के लिये कल्याणकारी हो। इसमें रहकर गौएँ पुष्ट हों और सन्तान उत्पन्न करके बढ़ती रहें। गौओं का स्वामी स्वयं गौओं की सभी व्यवस्था देखे ॥ ५ ॥

मया गावो गोपतिना सचध्वमयं वो गोष्ठ इह पोषयिष्णुः ।
रायस्पोषेण बहुला भवन्तीर्जीवा जीवन्तीरुप बः सदेम ॥६॥

गौएँ स्वामी के साथ आनन्द से मिल-जुलकर रहें। यह गोशाला अत्यन्त उत्तम है, इसमें रहकर गौएँ पुष्ट हों। अपनी शोभा और पुष्टि को बढ़ाती हुई गौएँ यहाँ वृद्धि को प्राप्त होती रहें। हम सब ऐसी उत्तम गौओंको प्राप्त करेंगे और उनका पालन करेंगे। ॥६॥

धनान्नदान सूक्त

ऋग्वेद १०। ११७

ऋग्वेद के दशम मण्डल का ११७वाँ सूक्त 'धनान्नदान सूक्त' के नामसे प्रसिद्ध है, इसमें दान की महत्ता प्रतिपादित की गयी है। इस सूक्त मन्त्रद्रष्टा ऋषि 'भिक्षुरांगिरस' हैं। पहली और दूसरी ऋचाओंमें जगती छन्द तथा अन्य ऋचाओं में त्रिष्टुप् छन्द है।

न वा उ देवाः क्षुधमिद्वधं ददुरुताशितमुप गच्छन्ति मृत्यवः ।
उतो रयिः पृणतो नोप दस्यत्युतापृणन् मडितारं न विन्दते ॥१॥

देवों ने भूख देकर प्राणियों का वध ही कर डाला। जो अन्न देकर भूख की ज्वाला शान्त करे, वही दाता है। भूखे को न देकर जो स्वयं भोजन करता है, एक दिन मृत्यु उसके प्राणों को हर लेती है। दान देने वाले का धन कभी नहीं घटता, उसे ईश्वर देता है। दान न देनेवाले कृपण को किसी से सुख प्राप्त नहीं होता ॥१॥

य आध्राय चकमानाय पित्वो ऽन्नवान्त्सन् रफितायोपजग्मुषे ।
स्थिरं मनः कृणुते सेवते पुरोतो चित् स मर्डितारं न विन्दते ॥२॥

अन्न की इच्छा से द्वार पर आकर हाथ फैलाये विकल व्यक्ति के प्रति जो अपना मन कठोर बना लेता है और अन्न होते हुए भी देने के लिये हाथ नहीं बढ़ाता तथा उसके सामने ही उसे तरसाकर खाता है, वह महाक्रूर कभी सुख प्राप्त नहीं कर सकता ॥२॥

स इद् भोजो यो गृहवे ददात्यन्नकामाय चरते कृशाय।
अरमस्मै भवति यामहूता उतापरीषु कृणुते सखायम् ॥३॥

घर आकर माँग रहे अति दुर्बल शरीर के याचक को जो भोजन देता है, उसे यज्ञ का सम्पूर्ण फल प्राप्त होता है तथा वह अपने शत्रुओं को भी मित्र बना लेता है ॥३॥

न स सखा यो न ददाति सख्ये सचाभुवे सचमानाय पित्वः ।
अपास्मात् प्रेयान्न तदोको अस्ति पृणन्तमन्यमरणं चिदिच्छेत् ॥४॥

जो अपने मित्र को माँगने पर भी दान नहीं देता, उसे छोड़कर दूर चले जाना चाहिये। उसको मित्र नही समझना चाहिए क्योंकि मित्र अपने अंग के समान होता है। दान नहीं देने वाले मित्र के घर को छोड़ कर किसी अन्य दान देने वाले की शरण ग्रहण करनी चाहिये ॥४॥

पृणीयादिनाधमानाय तव्यान् द्राधीयांसमनुपश्येत पन्थाम्।
ओ हि वर्तन्ते रथ्येव चक्रा ऽन्यमन्यमुप तिष्ठन्त राय: ॥५॥

जो याचक को अन्नादि का दान करता है, वहीं धनी है। उसे कल्याण का शुभ मार्ग प्रशस्त दिखायी देता है। वैभव-विलास रथ के चक्र की भाँति आते-जाते रहते हैं। किसी समय एक के पास सम्पदा रहती है तो कभी दूसरे के पास रहती हैं ॥ ५ ॥

मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः सत्यं ब्रवीमि वध इत् स तस्य ।
नार्यमणं पुष्यति नो सखायं केवलाघो भवति केवलादी ॥६॥

जिसका मन उदार ने हो, वह व्यर्थ ही अन्न उत्पन्न करता है। संचय ही उसकी मृत्यु का कारण बनता है। जो न तो देवों को और न ही मित्रों को तृप्त करता है, वह वास्तव में पाप का ही भक्षण करता है॥६॥

कृषन्नित् फाल आशितं कृणोति यन्नध्वानमप वृते चरित्रैः।
वदन् ब्रह्मावदतो वनीयान् पृणन्नापिरपृणन्तमभि ष्यात् ॥ ७॥

हल का उपकारी फाल खेत को जोतकर किसान को अन्न प्रदान करता है। गमनशील व्यक्ति अपने पैर के चिह्नों से मार्गका निर्माण करता है। बोलता हुआ ब्राह्मण न बोलने वालों से श्रेष्ठ होता है।॥ ७॥

एकपाद् भूयो द्विपदो वि चक्रमे द्विपात् त्रिपादमभ्येति पश्चात्।
चतुष्पादेति द्विपदामभिस्वरे संपश्यन् पङ्क्तीरुपतिष्ठमानः ॥ ८॥

एकांश का धनिक दो अंश के धनी के पीछे चलता है। दो अंशवाला भी तीन अंशवाले के पीछे छूट जाता है। चार अंशवाला पंक्ति में सबसे आगे चलता हुआ सबको अपने से पीछे देखता है। अतः वैभव का मिथ्या अभिमान न करके दान करना चाहिये ॥८॥

समौ चिद्धस्तौ न समं विविष्टः संमातरा चिन्न समं दुहाते।
यमयोश्चिन्न समा वीर्याणि ज्ञाती चित् संतौ न समं पृणीतः ॥९॥

दोनों हाथ एक समान होते हुए भी समान कार्य नहीं करते। दो गायें समान होकर भी समान दूध नहीं देतीं। दो जुड़वाँ सन्ताने समान होकर भी पराक्रम में समान नहीं होतीं। उसी प्रकार एक कुल में उत्पन्न दो व्यक्ति समान होकर भी दान करने में समान नहीं होते ॥९॥

रोग निवारण सूक्त

ऋग्वेद १०।१३७

ऋग्वेद के दशम मण्डल का १३७वाँ सूक्त तथा अथर्ववेद के चतुर्थ काण्डका १३वाँ सूक्त 'रोगनिवारणसूक्त' के नाम से प्रसिद्ध है। ऋग्वेदमें प्रथम मन्त्रके ऋषि भद्धाज, द्वितीय कश्यप, तृतीयके गौतम, चतुर्थके अत्रि, पंचमके विश्वामित्र, षष्ठके जमदग्नि तथा सप्तम मन्त्रके ऋषि वसिष्ठजी हैं और देवता विश्वेदेवा हैं। अथर्ववेदमें अनुष्टुप् छन्दके इस सूक्तके ऋषि शंताति तथा देवता चन्द्रमा एवं विश्वेदेवा हैं। यह सूक्त रोगों से मुक्ति प्रदान कर आरोग्यता प्राप्त करता है।

उत देवा अवहितं देवा उन्नयथा पुनः ।
उतागश्चक्रुषं देवा देवा जीवयथा पुनः ॥१॥

हे देवो! हे देवो! आप नीचे गिरे हुए को फिर निश्चयपूर्वक ऊपर उठाओ। हे देवो! हे देवो! और पाप करनेवाले को भी फिर जीवित करो, जीवित करो। ॥१॥

द्वाविमौ वातौ वात आ सिन्धोरा परावतः।
दक्षं ते अन्य आवातु व्यन्यो वातु यद्रपः ॥२॥

ये दो वायु हैं। समुद्र से आनेवाला वायु एक है और दूर भूमि पर से आनेवाला दूसरा वायु है। इनमें से एक वायु तेरे पास बल ले आये और दूसरा वायु जो दोष है, उसे दूर करे ॥२॥

आ वात वाहि भेषजं वि वात वाहि यद्रपः।
त्वं हि विश्वभेषज देवानां दूत ईयसे ॥३॥

हे वायु! औषधि यहाँ ले कर आओ। हे वायु! जो दोष है, उसे दूर करो। हे सम्पूर्ण औषधियों को साथ रखनेवाले वायु! निःसन्देह आप देवों के दूत के समान जैसे विचरण करते हो॥३॥

त्रायन्तामिमं देवास्त्रायन्तां मरुतां गणाः।
त्रायन्तां विश्वा भूतानि यथायमरपा असत् ॥४॥

हे देवो! इस रोगी की रक्षा करो। हे मरुतों के समूह! रक्षा करो। सब प्राणी रक्षा करें। जिससे यह रोगी रोग दोष रहित हो जाए ॥४॥

आ त्वागमं शंतातिभिरथो अरिष्टतातिभिः ।
दक्षं त उग्रमाभारिषं परा यक्ष्मं सुवामि ते ॥५॥

आप के पास शान्ति फैलाने वाले तथा अविनाशी करनेवाले साधनों के साथ आया हूँ। तुझे प्रचण्ड बल प्रदान करता हूँ। तुझे रोग मुक्त कर देता हूँ ॥५॥

आप इदा उ भेषजीरापो अमीवचातनीः।
आपः सर्वस्य भेषजीस्तास्ते कृण्वन्तु भेषजम् ॥६॥

जल ही निःसंदेह ओषधि हैं। जल रोग दूर करनेवाला है। जल सब रोगोंकी ओषधि हैं। वह जल तेरे लिये ओषधि बनाये।

[1]हस्ताभ्यां दशशाखाभ्यां जिह्वा वाचः पुरोगवी।
अनामयित्नुभ्यां हस्ताभ्यां ताभ्यां त्वाभि मृशामसि ॥७॥

दस शाखा वाले दोनों हाथों के साथ वाणी को आगे प्रेरणा करनेवाली मेरी जीभ है। उन नीरोग करने वाले दोनों हाथों से तुझे हम स्पर्श करते हैं ॥ ७

[1] अथर्ववेद में यह श्लोक इस प्रकार वर्णित है:
अयं मे हस्तो भगवानयं मे भगवत्तरः। यं मे विश्वभेषजोऽयं शिवाभिमर्शनः ॥६॥
मेरा यह हाथ भाग्यवान् है। मेरा यह हाथ अधिक भाग्यशाली है। मेरा यह हाथ सब औषधियों से युक्त है और यह मेरा हाथ शुभ स्पर्श प्रदान करने वाला है ॥६॥

औषधि सूक्त

[ऋक्० १०। ९७]

[ऋग्वेद दशम मण्डलका ९७वाँ सूक्त औषधिसूक्त कहलाता है। इस सूक्त के ऋषि आथर्वण भिषग् तथा देवता ओषधि हैं, छन्द अनुष्टुप् है। आरोग्यप्राप्तिको दृष्टिसे इस सूक्तका बड़ा महत्व है। इस सूक्त मे औषधियों को माताके समान रक्षक तथा पालन-पोषण करनेवाली और अनन्तशक्तिसम्पन्ना बताया गया है।

या औषधीः पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा ।
मनै नु बभ्रूणामहं शतं धामानि सप्त च ॥ १॥

जो देवों से पूर्व अर्थात् उनकी तीन पीढ़ियों के पहले ही उत्पन्न हुईं, उन पुरातन पीतवर्णा औषधियों के एक सौ सात सामर्थ्यों का मैं मनन करता हूँ॥ १।।

शतं वो अम्ब धामानि सहस्त्रमुत वो रुहः।
अधा शतक्रत्वो यूयमिमं मे अगदं कृत ॥ २॥

हे माताओ! तुम्हारी शक्तियाँ सैकड़ों हैं एवं तुम्हारी वृद्धि भी सहस्त्र प्रकार की है। हे शत-सामर्थ्य धारण करनेवाली औषधियो! तुम मेरे इस रुग्ण पुरुष को निश्चय ही रोगमुक्त करो ।। २ ।।

औषधीः प्रति मोदध्वं पुष्पवतीः प्रसूवरीः ।
अश्वा इव सजित्वरीवरुधः पारयिष्ण्वः ॥ ३॥

हे औषधियो! आनन्द मनाओ। तुम खिलनेवाली और फल प्रसवा हो। जोड़ी से स्पर्धा जीतनेवाली घोड़ियों की तरह ये लताएँ आपत्ति के पार पहुँचानेवाली हैं ॥ ३॥

औषधीरिति मातरस्तद्वो देवीरुप ब्रुवे।

सनेयमश्वं गां वास आत्मानं तव पूरुष॥४॥

हे औषधियो, माताओ, देवियो! मैं तुम्हारे पास इस प्रकार याचना करता हूँ कि अश्व, गाय तथा वस्त्र- यह सब मुझे मिलें और हे व्याधिग्रस्त पुरुष! तुम्हारी आत्मा भी रोगों से मुक्त होकर मेरे वश में हो जाएँ ॥४॥

अश्वत्थे वो निषदनं पर्णे वो वसतिष्कृता।
गोभाज इत् किलासथ यत् सनवथ पूरुषम् ॥५॥

हे औषधियो! तुम्हारा विश्रामस्थान अश्वत्थ वृक्ष पर है और तुम्हारे निवास की योजना पर्णवृक्षपर की गयी है। अगर तुम इस व्याधिपीडित पुरुषको व्याधियों से मुक्तकर मेरे पास लाकर दोगी तो तुम्हें अनेक गायों की प्राप्ति होगी ॥५॥

यत्रौषधीः समग्मत राजानः समिताविव।
विप्रः स उच्यते भिषग् रक्षोहामीवचातनः ॥ ६॥

राजालोग जिस प्रकार राजसभा में सम्मिलित होते हैं, उसी तरह जिस विप्र के साथ सभी औषधियाँ एक साथ निवास करती हैं, उसे लोग 'भिषक्' कहते हैं। वह राक्षसों का विनाश करके व्याधियों को भगा देता है॥ ६॥

अश्वावतीं सोमावतीमूर्जयन्तीमुदोजसम्।
आवित्सि सर्वा औषधीरस्मा अरिष्टतातये ॥ ७॥

रोग ग्रस्त पुरुष के सभी दु:ख नष्ट करने के उद्देश्य से अश्व प्राप्त करा देनेवाली, सोम-सम्बद्ध, ऊर्जा बढ़ाने वाली तथा ओजस्विनी ऐसी सभी औषधियाँ मैंने प्राप्त कर ली हैं ॥ ७ ॥

उच्छुष्मा औषधीनां गावो गोष्ठादिवेरते।
धनं सनिष्यन्तीनामात्मानं तव पूरुष ॥८॥

हे रुग्णपुरुष !धनलाभ की इच्छा करने वाली और तुम्हारी आत्मा को अपने वश में लानेवाली इन औषधियों की ये सभी शक्तियाँ उसी प्रकार मेरे पास से बाहर निकल रहीं हैं, जिस प्रकार गोष्ठ में से गायें निकलती हैं ॥८॥

इष्कृतिर्नाम वो माता ऽथो यूयं स्थ निष्कृतीः।

सीराः पतत्रिणीः स्थन यदामयति निष्कृथ॥९॥

हे औषधियो ! इष्कृति नामक तुम्हारी माता है और तुम स्वयं निष्कृति करने वाली हो। बहनेवाली होकर भी तुम्हारे पंख हैं। रोग-निर्माण करनेवाली जो-जो बातें हैं, उन्हें तुम बाहर निकाल देती हो ॥ ९ ॥

अति विश्वाः परिष्ठाः स्तेन इव व्रजमक्रमुः।
औषधीः प्राचुच्यवुर्यत् किं च तन्वो३ रपः॥१०॥

सभी प्रतिबन्धकों को तुच्छ मानकर जिस प्रकार चोर गायों के गोष्ठ में प्रवेश करके गायों को भगा देता है, उसी प्रकार हमारी इन औषधियोंने रोगी के शरीर में प्रवेश कर उसके शरीर में जो कुछ पीडा थी, उसे पूर्णतया बाहर निकाल दिया है ॥१०॥

यदिमा वाजयन्नहमोषधीहस्त आदधे।
आत्मा यक्ष्मस्य नश्यति पुरा जीवगृभो यथा ॥११॥

जिस समय औषधियों को शक्तिसम्पन्न बनाता हुआ मैं उन्हें अपने हाथ में धारण करता हूँ, उसी समय जीवन्त पकड़े जाने के पूर्व ही जिस प्रकार मृगादिक भाग जाते हैं, उसी प्रकार व्याधियों की आत्मा ही विनष्ट हो जाती है॥११॥

यस्यौषधीः प्रसर्पथाङ्गमङ्गं परुष्परुः।
ततो यक्ष्मं वि बाधध्व उग्रो मध्यमशीरिव॥ १२ ॥

हे औषधियो! जिस व्याधिपीडित पुरुषके अंग-प्रत्यंगों में और सभी सन्धियों में तुम प्रसृत हो जाती हो, उसके उन अंग और सन्धियों से अपने शिकारों के मध्य में पड़े रहने वाले उग्र हिंस्र पशु की तरह तुम उस व्याधि को दूर कर देती हो ॥ १२ ॥

साकं यक्ष्म प्र पत चाषेण किकिदीविना।
साकं वातस्य भाज्या साकं नश्य निहाकया ॥ १३॥

हे यक्ष्मा! नील कंठ और किकिदीविन–इन पक्षियों के साथ तुम दूर उड़ जाओ अथवा वात के अंधड़ एवं कुहरे के साथ विनष्ट हो जाओ ।। १३॥

अन्या वो अन्यामवत्वन्यान्यस्या उपावत।

ताः सर्वाः संविदाना इदं मे प्रावता वचः॥ १४॥

तुम परस्पर एक-दूसरे की सहायता करो। तुम आपस में वार्तालाप करो और सभी एकमत होकर मेरी उस प्रतिज्ञा की रक्षा करो ॥ १४ ॥

याः फलिनीर्या अफला अपुष्पा याश्च पुष्पिणीः।
बृहस्पतिप्रसूतास्ता नो मुञ्चन्त्वंहसः ॥ १५॥

जिनमें फल लगते हैं और जिनमें नहीं लगते; जिनमें फूल प्रकट होते हैं और जिनमें नहीं प्रकट होते, वे सभी औषधियाँ बृहस्पति की आज्ञा होने पर हमें इस आपत्ति से मुक्त करें ॥ १५ ॥

मुञ्चन्तु मा शपथ्याऽदथो वरुण्यादुत ।
अथो यमस्य पड्वीशात् सर्वस्माद्देवकिल्बिषात् ॥ १६॥

शत्रुओं की शपथों से निर्मित या वरुणद्वारा पीछे लगायी गयी आपत्तिसे वे मुझे मुक्त करें। उसी प्रकार यम के पाशबन्धन से और देवों के विरुद्ध किये गये अपराधों से भी वे मुझे मुक्त करें ॥ १६॥

अवपतन्तीरवदन् दिव ओषधयस्परि।
यं जीवमश्नवामहै न स रिष्याति पूरुषः ॥ १७॥

स्वर्गलोकसे इधर-उधर नीचे पृथ्वी पर अवतरण करती हुई औषधियों ने प्रतिज्ञा की कि जिस पुरुष को उसके जीवन की अवधि में हम स्वीकार करेंगी, वह कभी विनष्ट नहीं होगा ।। १७ ।।

या औषधीः सोमराज्ञीर्बह्वीः शतविचक्षणाः ।
तासां त्वमस्युत्तमारं कामाय शं हृदे॥ १८ ॥

यह सोम जिनका राजा है तथा जो बहुसंख्यक होकर शत प्रकारों की निपुणताओं से परिपूर्ण हैं, उन सभी ओषधियों में तुम्हीं श्रेष्ठ हो और हमारी अभिलाषा सफल करने तथा हमारे हृदयको आनन्द देने में भी समर्थ हो । १८ ।।

या औषधीः सोमराज्ञीविष्ठिताः पृथिवीमनु।
बृहस्पतिप्रसूता अस्यै सं दत्त वीर्यम्॥ १९॥

यह सोम जिनका राजा है तथा जो औषधियाँ पृथिवी के पृष्ठभागपर इधर-उधर बिखरी पड़ी हैं तथा तुम सभी बृहस्पति की आज्ञा हो जाने पर इन औषधियों को अपना-अपना बल समर्पित करो ॥ १९॥

मा वो रिषत् खनिता यस्मै चाहं खनामि वः।
द्विपच्चतुष्पदस्माकं सर्वमस्त्वनातुरम्॥ २०॥

तुम्हें खोदकर निकालने वाला मैं और जिसके लिये तुम्हें खोदकर निकालता हूँ वह रुग्ण पुरुष–इन दोनोंको किसी प्रकारका उपद्रव न होने दो। उसी प्रकार हमारे द्विपाद तथा चतुष्पाद प्राणी और अन्य जीव-ये सभी तुम्हारी कृपा से नीरोग रहें ॥२०॥

याश्चेदमुपशृण्वान्ते याश्च दूरं परागताः।
सर्वाः संगत्य वीरुधो ऽस्यै सं दत्त वीर्यम्॥२१॥

हे औषधि लताओ ! तुममें से जो मेरा यह वचन सुन रही हैं और जो यहाँ से दूर–अन्तर पर गयी हैं, वे सभी और तुम एकत्र होकर इन ओषधियों को अपना-अपना बल समर्पित करो ॥ २१ ॥

औषधयः सं वदन्ते सोमेन सह राज्ञा।
यस्मै कृणोति ब्राह्मणस्तं राजन् पारयामसि ॥ २२॥

अपना राजा जो सोम, उसके पास सभी ओषधियाँ सहमत होकर प्रतिज्ञा करती हैं कि हे राजन् ! जिसके लिये यह ब्राह्मण हमें अभिमन्त्रित करता है, उसे हम व्याधियों से मुक्त कर देती हैं ॥ २२ ॥

त्वमुत्तमास्योषधे तव वृक्षा उपस्तयः।
उपस्तिरस्तु सोऽस्माकं यो अस्माँ अभिदासति ॥ २३॥

हे ओषधि ! तुम सर्वश्रेष्ठ हो। सभी वृक्ष तुम्हारे आज्ञाकारी सेवक हैं। उसी प्रकार जो हमें कष्ट देना चाहता है, वह हमारी आज्ञा का दास बनकर रहे ॥ २३ ॥

दीर्घायुष्य सूक्त

[अथर्ववेद पैप्पलाद]

अथर्ववेदीय पैप्पलाद शाखा में वर्णित यह दीर्घायुष्यसूक्त' प्राणियों के लिये दीर्घायु प्रदायक है। इसमें मन्त्रद्रष्टा ऋषि पिप्पलाद ने देवों, ऋषियों, गन्धर्वो, लोकों, दिशाओं, ओषधियों तथा नदी, समुद्र आदि से दीर्घ आयुकी कामना की है।

सं मा सिञ्चन्तु मरुतः सं पूषा सं बृहस्पतिः।
सं मायमग्निः सिञ्चन्तु प्रजया च धनेन च।
दीर्घमायुः कृणोतु मे ॥१॥

मरुद्गण, पूषा, बृहस्पति तथा यह अग्नि मुझे बुद्धि एवं धन से परिपूर्ण कर मेरी आयु की वृद्धि करें ॥१॥

सं मा सिञ्चन्त्वादित्याः सं मा सिञ्चन्त्वग्नयः।
इन्द्रः समस्मान् सिञ्चतु प्रजया च धनेन च।
दीर्घमायुः कृणोतु मे ॥२॥

आदित्य, अग्नि, इन्द्र मुझे बुद्धि एवं धन से परिपूर्ण कर मुझे दीर्घ आयु प्रदान करें ॥२॥

सं मा सिञ्चन्त्वरुषः समर्का ऋषयश्च ये।
पूषा समस्मान् सिञ्चतु प्रजया च धनेन च।
दीर्घमायुः कृणोतु मे ॥३॥

अग्निकी ज्वालाएँ, प्राण, ऋषिगण और पूषा मुझे बुद्धि एवं धन से परिपूर्ण कर मुझे दीर्घ आयु प्रदान करें ॥३॥

सं मा सिञ्चन्तु गन्धर्वाप्सरसः सं मा सिञ्चन्तु देवताः।
भगः समस्मान् सिञ्चतु प्रजया च धनेन च।

दीर्घमायुः कृणोतु मे ॥४॥

गन्धर्व एवं अप्सराएँ, देवता और भग मुझे बुद्धि एवं धन से परिपूर्ण कर मुझे दीर्घ आयु प्रदान करें ॥४॥

सं मा सिञ्चतु पृथिवी सं मा सिञ्चन्तु या दिवः।
अन्तरिक्षं समस्मान् सिञ्चतु प्रजया च धनेन च।
दीर्घमायुः कृणोतु मे ॥५॥

पृथ्वी, द्युलोक और अन्तरिक्ष मुझे बुद्धि एवं धन से परिपूर्ण कर मुझे दीर्घ आयु प्रदान करें ॥५॥

सं मा सिञ्चन्तु प्रदिशः सं मा सिञ्चन्तु या दिशः।
आशाः समस्मान् सिञ्चन्तु प्रजया च धनेन च।
दीर्घमायुः कृणोतु मे ॥६॥

दिशा-प्रदिशाएँ एवं ऊपर-नीचेके प्रदेश मुझे बुद्धि एवं धन से परिपूर्ण कर मुझे दीर्घ आयु प्रदान करें ॥६॥

सं मा सिञ्चन्तु कृषयः सं मा सिञ्चन्त्वोषधीः।
सोमः समस्मान् सिञ्चतु प्रजया च धनेन च।
दीर्घमायुः कृणोतु मे ॥ ७॥

कृषिसे उत्पन्न धान्य, ओषधियाँ और सोम मुझे बुद्धि एवं धन से परिपूर्ण कर दीर्घ आयु प्रदान करें ॥ ७ ॥

सं मा सिञ्चन्तु नद्यः सं मा सिञ्चन्तु सिन्धवः।
समुद्रः समस्मान् सिञ्चतु प्रजया च धनेन च।
दीर्घमायुः कृणोतु मे ॥८॥

नदी, सिन्धु (नद्) और समुद्र मुझे बुद्धि एवं धन से परिपूर्ण कर दीर्घ आयु प्रदान करें ॥८॥

सं मा सिञ्चन्त्वापः सं मा सिञ्चन्तु कृष्टयः।
सत्यं समस्मान् सिञ्चतु प्रजया च धनेन च।

दीर्घमायुः कृणोतु मे ॥९॥

जल, कृष्ट ओषधियाँ तथा सत्य हम सबको बुद्धि एवं धन से परिपूर्ण कर दीर्घ आयु प्रदान करें ॥९॥

ब्रह्मचारीसूक्त

अथर्ववेद ११।५

अथर्ववेद के ११वें काण्ड में ५वां सूक्त ब्रह्मचर्य तथा ब्रह्मचारी की महिमा को वर्णित करता है। इस सूक्त के द्रष्टा ऋषि ब्रह्मा हैं। जो ब्रह्मचर्यव्रत धारण करता है, वह ब्रह्मचारी कहलाता है।

ब्रह्मचारीष्यांश्चरति रोदसी उभे तस्मिन् देवाः संमनसो भवन्ति।
स दाधार पृथिवीं दिवं च स आचार्यं तपसा पिपर्ति ॥ १॥

ब्रह्मचारी पृथिवी और द्युलोक-इन दोनों को बार बार अनुकूल बनाता हुआ चलता है, इसलिये उस ब्रह्मचारी के अंदर सब देव अनुकूल मन के साथ निवास करते हैं। वह ब्रह्मचारी पृथिवी और द्युलोक का धारणकर्ता है। और वह अपने तप से अपने आचार्य को परिपूर्ण बनाता है ॥१॥

ब्रह्मचारिणं पितरो देवजनाः पृथग् देवा अनुसंयन्ति सर्वे।
गन्धर्वा एनमन्वायन् त्रयस्त्रिंशत् त्रिशताः षट्सहस्राः सर्वान्त्स देवांस्तपसा पिपर्ति ॥२॥

देव, पितर, गन्धर्व और देवजन – यह सब ब्रह्मचारी का अनुसरण करते हैं। तीन, तीस, तीन सौ और छः हजार देव हैं। इन सब देवों का वह ब्रह्मचारी अपने तप से पालन करता है। ॥२॥

आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः ।
ते रात्रीस्तिस्त्र उदरे बिभर्ति तं जातं द्रष्टुमभिसंयन्ति देवाः ॥ ३॥

ब्रह्मचारी का उपनयन संस्कार करने वाले आचार्य एक प्रकार से उस ब्रह्मचारी को अपने गर्भ में तीन रात्रि तक स्थिर करता है, जब वह ब्रह्मचारी द्वितीय जन्म लेकर बाहर आता है, तब उसको देखनेके लिये सब विद्वान् सब प्रकार से इकट्ठे होते हैं ।। ३ ।।

इयं समित् पृथिवि द्यौर्द्वितीयोतान्तरिक्षं समिधा पृणाति ।
ब्रह्मचारी समिधा मेखलया श्रमेण लोकांस्तपसा पिपर्ति ॥४॥

यह पृथिवी पहिली समिधा है, और दूसरी समिधा द्युलोक है। इस समिधा से वह ब्रह्मचारी अन्तरिक्ष की पूर्णता करता है। समिधा, मेखला, श्रम करने का अभ्यास और तप इनके द्वारा वह ब्रह्मचारी सब लोकों को पूर्ण करता है ॥ ४ ॥

पूर्वो जातो ब्रह्मणो ब्रह्मचारी घर्मं वसानस्तपसोदतिष्ठत् ।
तस्माज्जातं ब्राह्मणं ब्रह्म ज्येष्ठं देवाश्च सर्वे अमृतेन साकम्॥५॥

ज्ञान प्राप्ति के पश्च्यात ब्रह्मचारी पूर्ण होता है तथा उष्णता धारण करता हुआ तप से ऊपर उठता है। उस ब्रह्मचारी से ब्रह्म सम्बन्धी श्रेष्ठ ज्ञान प्रसिद्ध होता है तथा सभी देवों का अमृत से पोषण करता है ।।५।।

ब्रह्मचार्येति समिधा समिद्धः काष्र्णं वसानो दीक्षितो दीर्घश्मश्रुः।
स सद्य एति पूर्वस्मादुत्तरं समुद्रं लोकान्त्संगृभ्य मुहुराचरिक्रत्॥ ६॥

तेजसे प्रकाशित कृष्ण चर्म धारण करता हुआ, व्रत के अनुकूल आचरण करनेवाला और बड़ी-बड़ी दाढ़ी-मूंछ धारण करनेवाला ब्रह्मचारी प्रगति करता है। वह लोगों को इकट्ठा करता हुआ अर्थात् लोकसंग्रह करता हुआ बारंबार उनको उत्साह देता है और पूर्व से उत्तर समुद्र तक अतिशीघ्र पहुँचता है।। ६ ।।

ब्रह्मचारी जनयन् ब्रह्मापो लोकं प्रजापतिं परमेष्ठिनं विराजम् ।
गर्भो भूत्वामृतस्य योनाविन्द्रो ह भूत्वासुरांस्ततर्ह ॥ ७ ॥

जो ज्ञानामृत के केन्द्रस्थान में गर्भरूप रहकर ब्रह्मचारी हुआ, वही ज्ञान, कर्म, जनता, प्रजापालक राजा और विशेष तेजस्वी परमेष्ठी परमात्मा को प्रकट करता हुआ, इन्द्र बनकर निश्चय से असुरों का नाश करता है।।७।।

आचार्यस्ततक्ष नभसी उभे इमे उर्वी गम्भीरे पृथिवीं दिवं च।
ते रक्षति तपसा ब्रह्मचारी तस्मिन् देवाः संमनसो भवन्ति। ८ ।।

यह अत्यंत गम्भीर, दोनों लोक, पृथिवी और द्युलोक आचार्य ने बनाये हैं। ब्रह्मचारी अपने तपसे उन दोनों का रक्षण करता है। इसलिये उस ब्रह्मचारी के अन्दर सब देव अनुकूल मन से रहते हैं॥ ८ ॥

इमां भूमिं पृथिवीं ब्रह्मचारी भिक्षामा जभार प्रथमो दिवं च।
ते कृत्वा समिधाबुपास्ते तयोरार्पिता भुवनानि विश्वा ।। ९ ।।

पहले ब्रह्मचारी ने इस विस्तृत भूमि की तथा द्युलोक की भिक्षा प्राप्त की है। अब वह ब्रह्मचारी उनकी दो समिधाएँ करके उपासना करता है; क्योंकि उन दोनों के बीच में सब भुवन स्थापित हैं।। ९ ।।

अर्वागन्यः परो अन्यो दिवस्पृष्ठाद् गुहा निधी निहितौ ब्राह्मणस्य।
तौ रक्षति ब्रह्मचारी तत् केवलं कृणुते ब्रह्म विद्वान् ॥ १०॥

एक पास है और दूसरा द्युलोक के पृष्ठभाग से परे है। ये दोनों कोश ज्ञानी की बुद्धि में स्थित हैं। उन दोनों कोशों का संरक्षण ब्रह्मचारी अपने तप से करता है तथा वहीं विद्वान् ब्रह्मचारी ब्रह्मज्ञान विस्तृत करता है, ज्ञान फैलाता है।। १० ।।

अर्वागन्य इतो अन्यः पृथिव्या अग्नी समेतो नभसी अन्तरेमे।
तयोः श्रयन्ते रश्मयोऽधि दृढास्ताना तिष्ठति तपसा ब्रह्मचारी ॥ ११ ॥

इधर एक है और इस पृथिवीसे दूर दूसरा है। ये दोनों अग्नि इन पृथिवी और द्युलोकके बीच में मिलते हैं। उनकी बलवान् किरणें फैलती हैं। ब्रह्मचारी तप से उन किरणों का अधिष्ठाता होता है । ११

अभिक्रन्दन् स्तनयनरुणः शिलिङ्गो बृहच्छेपोऽनु भूमौ जभार।
ब्रह्मचारी सिञ्चति सानौ रेतः पृथिव्यां तेन जीवन्ति प्रदिशश्चतस्रः ॥ १२ ॥

गर्जना करनेवाला भूरे और काले रंग से युक्त बड़ा प्रभावशाली ब्रह्म अर्थात् उदक को साथ ले जानेवाला मेघ भूमि का योग्य पोषण करता है। तथा पहाड़ और भूमि पर जलको वृष्टि करता है। उससे चारों दिशाएँ
जीवित रहती हैं ॥ १२ ॥

अग्नौ सूर्ये चन्द्रमसि मातरिश्वन् ब्रह्मचार्यश्प्सु समिधमा दधाति ।
तासामचषि पृथगन्ने चरन्ति तासामाज्यं पुरुषो वर्षमापः ॥ १३ ॥

अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, वायु, जल इनमें ब्रह्मचारी समिधा डालता है। उनके तेज पृथक्-पृथक् मेघों में संचार करते हैं। उनसे वृष्टि-जल, घी और पुरुषकी उत्पत्ति होती है ॥ १३ ॥

आचार्यो मृत्युर्वरुणः सोम ओषधयः पयः।

जीमूता आसन्त्सत्वानस्तैरिदं स्वश्राभृतम्॥१४॥

आचार्य ही मृत्यु, वरुण, सौम, औषधि तथा पय रूप है। उसके जो सात्त्विक भाव हैं, वे मेधरूप हैं; क्योंकि उनके द्वारा ही वह स्वत्व रहा है ॥१४॥

अमा घृतं कृणुते केवलमाचार्यो भूत्वा वरुणो यद्यदैच्छत् प्रजापतौ।
तद् ब्रह्मचारी प्रायच्छत् स्वान् मित्रो अध्यात्मनः ।। १५ ।।

एकत्व, सहवास, केवल शुद्ध तेज करता है। आचार्य वरुण बनकर प्रजापालक विषयमें जो-जो चाहता है, उसको मित्र ब्रह्मचारी अपनी आत्मशक्तिसे देता है।। १५ ।।

आचार्यों ब्रह्मचारी ब्रह्मचारी प्रजापतिः।
प्रजापतिर्वि राजति विराडिन्द्रोऽभवद् वशी।। १६॥

आचार्य ब्रह्मचारी होना चाहिये, प्रजापालक भी ब्रह्मचारी होना चाहिये। इस प्रकारका प्रजापति विशेष शोभता है। जो संयमी राजा होता है, वही इन्द्र कहलाता है॥ १६ ॥

ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं वि रक्षति ।
आचार्यों ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते ॥ १७॥

ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्।
अनड्वान् ब्रह्मचर्येणाश्वो घासं जिगीर्षति॥ १८ ॥

ब्रह्मचर्यरूप तप के साधन से राजा राष्ट्र का विशेष संरक्षण करता है। आचार्य भी ब्रह्मचर्य के साथ रहनेवाले ब्रह्मचारी की ही इच्छा करता कन्या ब्रह्मचर्य-पालन करने के पश्चात् तरुण पति को प्राप्त करती है। बैल और घोड़ा भी ब्रह्मचर्य-पालन करने से ही घास खाता है ॥ १८॥

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपानत।
इन्द्रोह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वराभरत् ॥ १९॥

ब्रह्मचर्यरूप तप से सब देवों ने मृत्यु को दूर किया। इन्द्र ब्रह्मचर्य से ही देवों को तेज देते हैं ॥ १९ ॥

ओषधयो भूतभव्यमहोरात्रे वनस्पतिः ।

संवत्सरः सहर्तुभिस्ते जाता ब्रह्मचारिणः ।। २० ।।

औषधियाँ, वनस्पतियाँ, ऋतुओंके साथ गमन करनेवाला संवत्सर, अहोरात्र, भूत और भविष्य ये सब ब्रह्मचारी हो गये हैं ॥ २० ॥

पार्थिवा दिव्याः पशव आरण्या ग्राम्याश्च ये।
अपक्षाः पक्षिणश्च ये ते जाता ब्रह्मचारिणः॥ २१॥

पृथिवी पर उत्पन्न होनेवाले अरण्य और ग्राम में उत्पन्न होने वाले जो पक्षहीन पशु हैं तथा आकाश में संचार करनेवाले जो पक्षी हैं, वे सब ब्रह्मचारी बन गए हैं॥ २१ ।।

पृथक् सर्वे प्राजापत्याः प्राणानात्मसु बिभ्रति ।
तान्त्सर्वान् ब्रह्म रक्षति ब्रह्मचारिण्याभृतम् ॥ २२।।

प्रजापति परमात्मा से उत्पन्न हुए सब ही पदार्थ पृथक्-पृथक् अपने अन्दर प्राणों को धारण करते हैं। ब्रह्मचारी में रहा हुआ ज्ञान उन सबका रक्षण करता है ।। २२ । ।

देवानामेतत् परिघूतमनभ्यारूढं चरति रोचमानम्।
तस्माज्जातं ब्राह्मणं ब्रह्म ज्येष्ठं देवाश्च सर्वे अमृतेन साकम्॥ २३ ॥

देवों का यह उत्साह देनेवाला सबसे श्रेष्ठ तेज चलता है। उससे ब्रह्मसम्बन्धी श्रेष्ठ ज्ञान हुआ है और अमर मन के साथ सब देव प्रकट हो गये ॥ २३ ॥

ब्रह्मचारी ब्रह्म भ्राज बिभर्ति तस्मिन् देवा अधि विश्वे समोताः।
प्राणापानौ जनयन्नाद् व्यानं वाचं मनो हृदयं ब्रह्म मेधाम् ॥ २४॥

चक्षुः श्रोत्रं यशो अस्मासु धेह्यन्नं रेतो लोहितमुदरम्॥ २५ ॥

चमकनेवाला ज्ञान ब्रह्मचारी धारण करता है। इसलिये उसमें सब देव रहते हैं। वह प्राण, अपान, व्यान, वाचा, मन, हृदय, ज्ञान और मेधा प्रकट करता है। इसलिये हे ब्रह्मचारी ! हम सबमें चक्षु, श्रोत्र, यश, अन्न, वीर्य, रुधिर और पेट पुष्ट करो ॥ २४-२५ ॥

तानि कल्पद् ब्रह्मचारी सलिलस्य पृष्ठे तपोऽतिष्ठत् तप्यमानः समुद्रे ।
स स्नातो बभ्रुः पिङ्गलः पृथिव्यां बहु रोचते ॥ २६॥

ब्रह्मचारी उनके विषय में योजना करता है। जल के समीप तप करता है। इस ज्ञानसमुद्र में तप्त होनेवाला यह ब्रह्मचारी जब स्नातक हो जाता है, तब अत्यन्त तेजस्वी होनेके कारण वह इस पृथिवी पर बहुत चमकता है। २६ ।।

मन्यु सूक्त

ऋग्वेद १०।८३-८४

ऋग्वेद के दशम मण्डल के दो सूक्त ८३वाँ और ८४वाँ मन्युदेवतापरक होने के कारण मन्युसूक्त कहलाते हैं। इन दोनों सूक्तों के ऋषि मन्युस्तापस हैं। मन्युदेवता का अर्थ उत्साहशक्तिसम्पन्न देव किया गया है।

यस्ते मन्योऽविधद्वज्र सायक सह ओजः पुष्यति विश्वमानुषक् ।
साह्याम दासमार्यं त्वया युजा सहस्कृतेन सहसा सहस्वता ॥१॥

हे वज्र के समान कठोर और बाण के समान हिंसक उत्साह! जो तेरा सत्कार करता है, वह सभी शत्रुओं को पराजित करने का सामर्थ्य तथा बल का एक साथ पोषण करता है। तेरी सहायता से तेरे बल बढ़ानेवाले, शत्रु को पराजित करनेवाले और महान् सामर्थ्य से हम दास और आर्य शत्रुओं को पराजित करें ॥ १ ॥

मन्युरिन्द्रो मन्युरेवास देवो मन्युहता वरुणो जातवेदाः ।
मन्युं विश ईळते मानुषीर्याः पाहि नो मन्यो तपसा सजोषाः ।।२।।

मन्यु इन्द्र है, मन्यु ही देव है, मन्यु होता वरुण और जातवेद अग्नि है। जो सारी मानवी प्रजाएँ हैं, वे सब मन्यु की ही स्तुति करती हैं, अत: हे मन्यु ! तप से शक्तिमान् होकर हमारा संरक्षण कर ॥ २ ॥

अभीहि मन्यो तवसस्तवीयान् तपसा युजा वि जहि शत्रून्।
अमित्रहा वृत्रहा दस्युहा च विश्वा वसून्या भरा त्वं नः ॥ ३॥

हे उत्साह ! यहाँ आकर तू अपने बल से महाबलवान् हो जा। द्वन्द्व सहन करने की शक्ति से युक्त होकर शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर, तू शत्रुओं का संहारक, दुष्टों का विनाशक और दु:खदायिओं का नाश करने वाला है। तू हमें सभी धनो से भरपूर कर दे ॥ ३ ॥

त्वं हि मन्यो अभिभूत्योजाः स्वयंभूर्भामो अभिमातिषाहः।
विश्वचर्षणिः सहुरिः सहावानस्मास्वोजः पृतनासु धेहि ॥ ४॥

हे मन्यु ! तेरा सामर्थ्य शत्रु को हरानेवाला है, तू स्वयं अपनी शक्ति से रहनेवाला है, तू स्वयं तेजस्वी है और शत्रु पर विजय प्राप्त करनेवाला है, शत्रुओं को पराजित करनेवाला बलवान् है, तू हमारी सेनाओं में बल का विस्तार कर ।। ४ ।।

अभागः सनप परेतो अस्मि तव कृत्वा तविषस्य प्रचेतः ।
तं त्वा मन्यो अक्रतुर्जिहीळाहं स्वा तनूर्बलदेयाय मेहि ॥५॥

हे विशेष ज्ञानवान् मन्यु ! महत्त्वसे युक्त ऐसे तेरे कर्म से यज्ञमें भाग न देनेवाला होने के कारण मैं पराजित हुआ हूँ। उस तुझमें यज्ञ न करने के कारण मैंने क्रोध उत्पन्न किया है। अत: इस मेरे शरीर में बल बढ़ाने के लिये मेरे पास आ॥५॥

अयं ते अस्युप मेह्यर्वाङ् प्रतीचीनः सहुरे विश्वधायः ।
मन्यो वज्रिन्नभि मामा ववृत्स्व नाव दस्यूँरुत बोध्यापेः ॥६॥

हे शत्रु को पराजित करने वाले तथा सबके धारण करनेवाले उत्साह! यह मैं तेरा हूँ। मेरे पास आ जा, मेरे समीप रह । हे वज्रधारी! मेरे पास आकर रह, हम दोनों मिलकर शत्रुओं का विनाश करें। यह निश्चित है की तू हमारा बन्धु है ॥६॥

अभि प्रेहि दक्षिणतो भवा मे ऽधा वृत्राणि जङ्नाव भूरि।
जुहोमि ते धरुणं मध्वो अग्रमुभा उपांशु प्रथमा पिबाव ॥ ७॥

मेरे समीप आकर मेरा दाहिना हाथ होकर रह। इससे हम बहुत शत्रुओं का विनाश कर सकेंगे। तेरे लिये मधुर रस के भाग का मैं हवन करता हूँ। इस मधुर रस को हम दोनों एकान्त में पहले पीयेंगे ॥ ७ ॥

त्वया मन्यो सरथमारुजन्तो हर्षमाणासो धृषिता मरुत्वः ।
तिग्मेषव आयुधा संशिशाना अभि प्र यन्तु नरो अग्निरूपाः ॥ १।।

हे उत्साह! तेरे साथ एक रथ पर चढ़कर हर्षित और धैर्यवान् होकर तीक्ष्ण बाणवाले, आयुधों को तीक्ष्ण करनेवाले तथा अग्नि के समान तेजस्वी वीर आगे चलें ॥ १ ॥

अग्निरिव मन्यो विषितः सहस्व सेनानीनैः सहुरे हूत एधि।
हत्वाय शत्रून् वि भजस्व वेद ओजो मिमानो वि मृधो नुदस्व॥ २॥

हे उत्साह! अग्नि के समान तेजस्वी होकर शत्रुओं को पराजित कर। हे शत्रुओं को पराजित करने वाले मन्यु ! हम तुम्हारा अपने सेनापति के रूप में चयन करते हैं। शत्रुओं का विनाश कर धन हमें विभक्त करके दे, हमारा बल बढ़ाकर शत्रुओं का विनाश कर ।। २ ।।

सहस्व मन्यो अभिमातिमस्मे रुजन् मृणन् प्रमृणन् प्रेहि शत्रून्।
उग्रं ते पाजो नन्वा रुरुधे वशी वशं नयस एकज त्वम् ॥ ३॥

हे उत्साह ! हमारे लिये शत्रु को पराजित कर, शत्रुओं को कुचलकर, मारकर तथा उनका विनाश करता हुआ शत्रुओं को दूर भगा दे, तेरा बल अतुलित है, सचमुच उसका कौन सामना कर सकता है ? तू अकेला ही सबको वश में करनेवाला होकर अपने वश में सबको करता है ।। ३ ।।

एको बहूनामसि मन्यवीळितो विशंविशं युधये सं शिशाधि।
अकृतरुक् त्वया युजा वयं द्युमन्तं घोषं विजयाय कृण्महे ।। ४॥

हे उत्साह ! तू बहुतों में अकेला ही प्रशंसित हुआ है। युद्ध के लिये प्रत्येक मनुष्य को तीक्ष्ण कर, तैयार कर। तुझसे युक्त होने के कारण हमारा तेज कम नहीं होता। हम अपनी विजयके लिये तेजस्वी घोषणा करें ।। ४ ||

विजेषकृदिन्द्र इवानवब्रवोऽस्माकं मन्यो अधिपा भवेह।
प्रियं ते नाम सहुरे गृणीमसि विद्मा तमुत्सं यत आबभूथ॥ ५ ॥

हे उत्साह! इन्द्र के समान विजय प्राप्त करनेवाला और स्तुति के योग्य तू हमारा संरक्षक बन जा। हे शत्रु को परास्त करने वाले ! तेरा प्रिय नाम हम लेते हैं, उस बल बढ़ाने वाले उत्साह को हम जानते हैं और जहाँ से वह उत्साह प्रकट होता है, वह भी हम जानते हैं। ५ ।।

आभूत्या सहजा वज्र सायक सहो बिभर्ष्याभिभूत उत्तरम्।
क्रत्वा नो मन्यो सह मेद्येधि महाधनस्य पुरुहूत संसृजि॥ ६॥

हे वज्र के समान बलवान् और बाण के समान तीक्ष्ण उत्साह! शत्रु से पराजय प्राप्त करने के कारण उत्पन्न हुआ तू हे पराभूत मन्यो ! अधिक उच्च सामर्थ्य धारण करता है, पराजित होने पर तेरा सामर्थ्य बढ़ता है। हे स्तुति योग्य उत्साह ! हमारे कर्म से सन्तुष्ट होकर युद्ध शुरू होने पर बुद्धिके साथ हमारे समीप आ॥ ६॥

संसृष्टं धनमुभयं समाकृतमस्मभ्यं दत्तां वरुणश्च मन्युः।
भियं दधाना हृदयेषु शत्रवः पराजितासो अप नि लयन्ताम् ॥ ७ ॥

वरुण और उत्साह उत्पन्न किया हुआ तथा संग्रह किया हुआ दोनों प्रकार का धन हमें दें। पराजित हुए शत्रु अपने हृदयों में भय धारण करते हुए दूर भाग जायें ॥ ७ ॥

अभ्युदय सूक्त

[अथर्ववेद]

अथर्ववेद के उत्तरार्द्ध भाग का १७वां काण्ड अभ्युदय सूक्त कहलाता है। अभ्युदय सूक्त के ऋषि ब्रह्मा तथा देवता आदित्य हैं। इस सूक्त में स्तोता परब्रह्म परमेश्वर से दीर्घायु, सर्वप्रियता, सुमति, सुख, तेज, ज्ञान, बल, पवित्र बाणी, बलवान् प्राणशक्ति, सर्वत्र अनुकूलता आदि वरदानों की प्रार्थना कर रहा है:

विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम् ।
सहमानं सहोजितं स्वर्जितं गोजितं संधनाजितम् ।
ईड्यं नाम ह्व इन्द्रमायुष्मान् भूयासम् ॥ १॥

अत्यन्त समर्थ, अत्यन्त बलवान्, नित्य विजयी, शत्रु को पराजित करने वाले, महाबलिष्ठ, बल से दिग्विजय करने वाले, अपने सामर्थ्य से जीतनेवाले, भूमि, इन्द्रियों और गौओं को जीतनेवाले, धनको जीतकर प्राप्त करनेवाले तथा प्रशंसनीय यश वाले प्रभु की मैं प्रशंसा करता हूँ, जिससे मैं दीर्घायु प्राप्त करूँ ॥ १ ॥

विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम्।
सहमानं सहोजितं स्वर्जितं गोजितं संधनाजितम्।
ईड्यं नाम ह्व इन्द्रं प्रियो देवानां भूयासम्॥ २॥

अत्यन्त समर्थ, अत्यन्त बलवान्, नित्य विजयी, शत्रु को पराजित करने वाले, महाबलिष्ठ, बल से दिग्विजय करने वाले, अपने सामर्थ्य से जीतनेवाले, भूमि, इन्द्रियों और गौओं को जीतनेवाले, धनको जीतकर प्राप्त करनेवाले तथा प्रशंसनीय यश वाले प्रभु की मैं प्रशंसा करता हूँ, जिससे मैं देवों का प्रिय बन सकूँ ॥ २ ॥

विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम्।
सहमानं सहोजितं स्वर्जितं गोजितं संधनाजितम्।
ईड्यं नाम ह्व इन्द्रं प्रियः प्रजानां भूयासम्॥३॥

अत्यन्त समर्थ, अत्यन्त बलवान्, नित्य विजयी, शत्रु को पराजित करने वाले, महाबलिष्ठ, बल से दिग्विजय करने वाले, अपने सामर्थ्य से जीतनेवाले, भूमि, इन्द्रियों और गौओं को जीतनेवाले, धनको जीतकर प्राप्त करनेवाले तथा प्रशंसनीय यश वाले प्रभु की मैं प्रशंसा करता हूँ, जिससे मैं प्रजाओं का प्रिय बन जाऊं॥ ३ ॥

विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम्।
सहमानं सहोजितं स्वर्जितं गोजितं संधनाजितम्।
ईड्यं नाम ह्व इन्द्रं प्रियः पशूनां भूयासम्॥४॥

अत्यन्त समर्थ, अत्यन्त बलवान्, नित्य विजयी, शत्रु को पराजित करने वाले, महाबलिष्ठ, बल से दिग्विजय करने वाले, अपने सामर्थ्य से जीतनेवाले, भूमि, इन्द्रियों और गौओं को जीतनेवाले, धनको जीतकर प्राप्त करनेवाले तथा प्रशंसनीय यश वाले प्रभु की मैं प्रशंसा करता हूँ, जिससे मैं पशुओं का प्रिय बन जाऊं ॥४॥

विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम्।
सहमानं सहोजितं स्वर्जितं गोजितं संधनाजितम्।
ईड्यं नाम ह्व इन्द्रं प्रियः समानानां भूयासम्॥५॥

अत्यन्त समर्थ, अत्यन्त बलवान्, नित्य विजयी, शत्रु को पराजित करने वाले, महाबलिष्ठ, बल से दिग्विजय करने वाले, अपने सामर्थ्य से जीतनेवाले, भूमि, इन्द्रियों और गौओं को जीतनेवाले, धनको जीतकर प्राप्त करनेवाले तथा प्रशंसनीय यश वाले प्रभु की मैं प्रशंसा करता हूँ, जिससे मैं समान योग्यतावाले पुरुषों को भी प्रिय बन सकूँ ।।५।।

उदिह्यदिहि सूर्य वर्चसा माभ्युदिहि।
द्विषश्च मह्यं रध्यतु मा चाहं द्विषते रधं तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥ ६॥

हे सूर्य! उदय होइये, उदय को प्राप्त होइये, अपने तेज से उदित होकर मुझपर चारों ओर से प्रकाशित होइये। मेरा द्वेष करनेवाला मेरे वश में हो जाएँ, परंतु मैं द्वेष करनेवाले शत्रु के वश कभी न होऊँ। हे व्यापक ईश्वर! आपके ही बल अनेक प्रकार के हैं। आप हमें अनेक रूपवाले पशुओं से पूर्ण करें और परम आकाश में विद्यमान अमृत में धारण करें ।। ६ ।।

उदिद्युदिहि सूर्य वर्चसा माभ्युदिहि।
यांश्च पश्यामि यांश्च न तेषु मा सुमतिं कृधि तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि।

त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥ ७॥

हे सूर्य ! उदयको प्राप्त होइये, उदयको प्राप्त होइये और अपने तेज से मुझे प्रकाशित कीजिये। जिन प्राणियों को मैं देखता हूँ और जिनको नहीं भी देखता-उनके विषयमें मुझे बुद्धि प्रदान कीजिये। आप हमें अनेक रूपवाले पशुओं से पूर्ण करें और परम आकाश में विद्यमान अमृत में धारण करें ।।७।।

मा त्वा दभन्सलिले अप्स्वन्तर्ये पाशिन उपतिष्ठन्त्यत्र।
हित्वाशस्तिं दिवमारुक्ष एतां स नो मृड सुमतौ ते स्याम तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥ ८॥

जल के अन्दर जो पाश वाले यहाँ आकर उपस्थित होते हैं, वे आपको पराजित न कर सकें। निन्दा को त्याग कर द्युलोक पर आरूढ़ होइये और वह आप हमें सुखी कीजिये, हम आपकी सुमति में रहेंगे। आप हमें अनेक रूपवाले पशुओं से पूर्ण करें और परम आकाश में विद्यमान अमृत में धारण करें ॥ ८ ॥

त्वं न इन्द्र महते सौभगायादब्धेभिः परि पाह्यक्तुभिस्तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥ ९ ॥

हे इन्द्र! आप हम सबको बड़े सौभाग्य के लिये अनंत प्रकाशों से सब ओर से सुरक्षित रखें। आप हमें अनेक रूपवाले पशुओं से पूर्ण करें और परम आकाश में विद्यमान अमृत में धारण करें ।।९।।

त्वं न इन्द्रोतिभिः शिवाभिः शंतमो भव।
आरोहंस्त्रिदिवं दिवो गृणानः सोमपीतये प्रियधामा स्वस्तये तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥ १०॥

हे इन्द्र! आप कल्याणपूर्ण रक्षणों के साथ हमें उत्तम कल्याण देनेवाले हों। द्युलोक पर आरूढ़ होकर प्रकाश को देते हुए सोमपान और कल्याण के लिये प्रस्थान करें। आप हमें अनेक रूपवाले पशुओं से पूर्ण करें और परम आकाश में अमृत में धारण करें ॥ १० ॥

त्वमिन्द्रासि विश्वजित् सर्ववित् पुरुहूतस्त्वमिन्द्र।
त्वमिन्द्रेमं सुहवं स्तोममेरयस्व स नो मृड सुमतौ ते स्याम तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥११॥

हे इन्द्र! आप जगज्जेता और सर्वज्ञ हैं और हे इन्द्र! आप बहुत प्रशंसित हैं। हे इन्द्र! आप इस उत्तम प्रार्थना वाले स्तोत्र को प्रेरित करें। आप हमें अनेक रूपवाले पशुओं से पूर्ण करें और परम आकाश में विद्यमान अमृत में धारण करें ॥ ११ ॥

अदब्धो दिवि पृथिव्यामुतासि न त आपुर्महिमानमन्तरिक्षे।
अदब्धेन ब्रह्मणा वावृधानः स त्वं न इन्द्र दिवि पंछर्म यच्छ तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥ १२॥

हे इन्द्र! आप द्युलोक में और इस पृथ्वी पर छुपे हुए नहीं हैं, अन्तरिक्ष में आपके जैसी महिमा को कोई प्राप्त नहीं कर सकता। न चुप सकने वाले ज्ञान से बढ़ते हुए द्युलोक में आप हमें सुख प्रदान करें। आप हमें अनेक रूपवाले पशुओं से पूर्ण करें और परम आकाश में विद्यमान अमृत में धारण करें ।। १२ ।।

या त इन्द्र तनूरप्सु या पृथिव्यां यान्तरग्नौ या त इन्द्र पवमाने स्वर्विदि।
ययेन्द्र तन्वाऽन्तरिक्षं व्यापिथ तया न इन्द्र तन्वाइ शर्म यच्छ तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ।। १३॥

हे इन्द्र ! जो आपका अंश जल में है, जो पृथ्वी पर और जो अग्नि के अन्दर है, और जो आपका अंश पवित्र करनेवाले प्रकाशपूर्ण द्युलोक में हैं, हे इन्द्र! जिस तनू से आप अन्तरिक्ष में व्यापते हैं, उस तनू से हम सबको सुख प्रदान करें। हमें अनेक रूपवाले पशुओंसे पूर्ण करें और परम आकाश में विद्यमान अमृत में धारण करें ॥ १३ ॥

त्वामिन्द्र ब्रह्मणा वर्धयन्तः सत्रं नि षेदुऋषयो नाधमानास्तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥१४॥

हे इन्द्र ! आपकी मन्त्रों से स्तुति करते हुए प्रार्थना करनेवाले ऋषिगण सत्र नामक याग में बैठते हैं। आप हमें अनेक रूपवाले पशुओं से पूर्ण करें और परम आकाश में विद्यमान अमृत में धारण करें ।। १४ ।।

त्वं तृतं त्वं पर्येष्युत्सं सहस्रधारं विदथं स्वर्विदं तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥ १५॥

हे व्यापक देव! आप तीनों स्थानों में प्राप्त सहस्रधाराओंसे युक्त ज्ञानमय प्रकाशपूर्ण स्रोतको व्यापते हैं। आप हमें अनेक रूपवाले पशुओंसे पूर्ण करें और परम आकाशमें मुझे अमृतमें धारण करें ॥ १५ ॥

त्वं रक्षसे प्रदिशश्चतस्रस्त्वं शोचिषा नभसी वि भासि।
त्वमिमा विश्वा भुवनानु तिष्ठस ऋतस्य पन्था मन्वेषि विद्वांस्तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥ १६॥

है देव! आप चारों दिशाओं की रक्षा करते हैं। अपने तेज से आकाश को प्रकाशित करते हैं। आप इन सब भुवनों के अनुकूल होकर ठहरते हैं और जानते हुए सत्य के मार्ग का अनुसरण करते हैं। आप हमें अनेक रूपवाले पशुओं से पूर्ण करें और परम आकाश में विद्यमान अमृत में धारण करें ॥ १६॥

पञ्चभिः पराङ्तपस्येकयार्वाशस्तिमेषि सुदिने बाधमानस्तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥ १७॥

हे देव! आप अपनी पाँचों शक्तियों से एक ओर तपते हैं और एक से दूसरी ओर तपते हैं और उत्तम दिनमें अप्रशस्तता को दूर हटाते हुए चलते हैं। आप हमें अनेक रूपवाले पशुओं से पूर्ण करें और परम आकाश में विद्यमान अमृत में धारण करें ॥ १७ ॥

त्वमिन्द्रस्त्वं महेन्द्रस्त्वं लोकस्त्वं प्रजापतिः ।
तुभ्यं यज्ञो वि तायते तुभ्यं जुह्वति जुह्वतस्तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥ १८॥

है देव! आप इन्द्र हैं, आप महेन्द्र हैं, आप लोक-प्रकाशपूर्ण हैं, आप प्रजापालक हैं, यज्ञ आपके लिये किया जाता है और हवन करनेवाले आपके लिये आहुतियाँ देते हैं। आप हमें अनेक रूपवाले पशुओं से पूर्ण करें और परम आकाश में विद्यमान अमृत में धारण करें ॥ १८ ॥

असति सत् प्रतिष्ठितं सति भूतं प्रतिष्ठितम् भूतं ह भव्यं
आहितं भव्यं भूते प्रतिष्ठितं तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥ १९॥

हे देव ! आप असत मे अर्थात् प्राकृतिक विश्व में सत् अर्थात् आत्मा हैं, समें अर्थात् आत्मा में उत्पन्न हुए जगत् हैं, भूत होनेवाले में आश्रित हैं, होने वाले भूत में प्रतिष्ठित हुए हैं। आप हमें अनेक रूपवाले पशुओं से पूर्ण करें और परम आकाश में विद्यमान अमृत में धारण करें ।। १९ ।।।

शुक्रोऽसि भ्राजोऽसि।
स यथा त्वं भ्राजता भ्राजोऽस्येवाहं भ्राजता भ्राज्यासम् ।। २० ॥

आप तेजस्वी हैं, आप प्रकाशमय हैं, जैसे आप तेजस्वी हैं, वैसे ही मैं तेज से प्रकाशित हो । २० ।।।

रुचिरसि रोचोसि।
स यथा त्वं रुच्या रोचोऽस्येवाहं पशुभिश्च ब्राह्मणवर्चसेन च रुचिषीय॥ २१॥

आप प्रकाशमान हैं, आप देदीप्यमान हैं, जैसे आप तेजसे तेजस्वी हैं, वैसे ही मैं पशुओं और ज्ञानके तेजसे प्रकाशित हो जाऊँ ॥ २१ ॥

उद्यते नम उदायते नम उदिताय नमः।
विराजे नमः स्वराजे नमः सम्राजे नमः ॥ २२॥

उदित होने वाले को नमस्कार है, ऊपर आनेवाले के लिये नमस्कार है, उदय को प्राप्त हुए को नमस्कार है, विशेष प्रकाशमान को नमस्कार है, अपने तेज से चमकनेवाले को नमस्कार है, उत्तम प्रकाशयुक्त को नमस्कार है ॥ २२ ॥

अस्तंयते नमोऽस्तमेष्यते नमोऽस्तमिताय नमः।
विराजे नमः स्वराजे नमः सम्राजे नमः ॥२३॥

अस्त होनेवाले को नमस्कार है, अस्त को जानेवाले को नमस्कार है, अस्त हुए को नमस्कार है, विशेष तेजस्वी, उत्तम प्रकाशमान और अपने तेज से प्रकाशित होनेवाले को नमस्कार है॥ २३ ॥

उदगादयमादित्यो विश्वेन तपसा सह।
सपत्नान् मह्यं रन्धयन् मा चाहं द्विषते रधं तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि।
त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन् ॥ २४॥

ये सूर्य सम्पूर्ण तेज के साथ उदित हैं। मेरे लिये मेरे शत्रुओं को वश में करते हैं, परंतु मैं शत्रुओं के कभी वश में न आऊँ। हे व्यापक देव! आपके ही ये सब पराक्रम हैं। आप हम सबको अनन्त रूपों वाले पशुओं से परिपूर्ण करें और परम आकाश में विद्यमान अमृतमें मुझे धारण करें ।। २४ ॥

आदित्य नावमारुक्षः शतारित्रां स्वस्तये।
अहर्मात्यपीपरों रात्रिं सत्राति पारय॥ २५॥

हे आदित्य! आप हमारे कल्याण के लिये सैकड़ों आरों वाली नौका पर आरूढ हों। मुझे दिन और रात्रिके समय भी साथ रहकर पार पहुँचा दें ॥ २५।।

सूर्य नावमारुक्षः शतारित्रां स्वस्तये।
रात्रिं मात्यपीपरोऽहः सत्राति पारय॥ २६ ॥

हे सूर्य ! आप हमारे कल्याणके लिये नौकापर चढ़े और हमें दिन तथा रात्रि के समय पार करें ॥ २६ ॥

प्रजापतेरावृतो ब्रह्मणा वर्मणाहं कश्यपस्य ज्योतिषा
वर्चसा जरदष्टिः कृतवीर्यो विहायाः सहस्रायुः सुकृतश्चरेयम् ॥ २७॥

परीवृतो ब्रह्मणा वर्मणाहं कश्यपस्य ज्योतिषा वर्चसा च।
मा मा प्रापन्निषवो दैव्या या मा मानुषीरवसृष्टा वधाय॥ २८ ॥

मैं प्रजापति के ज्ञानरूप कवच से आवृत होकर और सर्वदर्शक देव के तेज और बल से युक्त होकर वृद्धावस्थातक वीर्यवान् हुआ विविध कर्मों से युक्त सहस्त्रायु-पूर्णायु होकर सर्वदर्शक देव के तेज से और बल से युक्त होकर जो दिव्य और मानवी बाण वध के लिये भेजे गये हों, वे मुझे न प्राप्त हों, उनसे मेरा वध न हो।। २७-२८॥

ऋतेन गुप्त ऋतुभिश्च सर्वैर्भूतेन गुप्तो भव्येन चाहम् ।
मा मा प्रापत् पाप्मा मोत मृत्युरन्तर्दधेऽहं सलिलेन वाचः ।। २९॥

सत्य के द्वारा रक्षित, सब ऋतुओं द्वारा रक्षित, भूत और भविष्य द्वारा सुरक्षित हुआ मैं यहाँ विचरूं। पाप अथवा मृत्यु मुझे न प्राप्त हो। मैं अपनी वाणी को–अपने शब्द को पवित्र जीवन के अन्दर धारण करता हूँ। वाणी की पवित्रता पवित्र-जीवन से करता हूँ॥ २९ ॥

अग्निर्मा गोप्ता परि पातु विश्वत उद्यन्त्सूर्यो नुदतां मृत्युपाशान् ।
व्युच्छन्तीरुषसः पर्वता ध्रुवाः सहस्त्रं प्राणा मय्या यतन्ताम् ॥ ३०॥

रक्षक अग्नि सब ओर से मेरी रक्षा करे। उदय होने वाला सूर्य मृत्युपाशों को दूर करे। प्रकाशयुक्त उषाएँ और स्थिर पर्वत सहस्त्र बलवाले प्राण मेरे अन्दर फैलाये रखें ॥ ३० ॥

मधुसूक्त

[अथर्ववेद]

अथर्ववेद के नवमकाण्ड में मधुविद्या विषय पर एक अद्‌भुत सूक्त विद्यमान है। इस सूक्तके ऋषि अथर्वा तथा देवता मधु एवं अश्विनीकुमार हैं। इस सूक्तमें विशेषरूपसे गोमहिमा वर्णित है।

दिवस्पृथिव्या अन्तरिक्षात् समुद्रादग्नेर्वातान्मधुकशा हि जज्ञे।
तां चायित्वामृतं वसानां हृद्भिः प्रजाः प्रति नन्दन्ति सर्वाः ॥ १॥

द्‌युलोक, अन्तरिक्ष और पृथ्वी, समुद्र के जल, अग्नि और वायु से मधुकशा (मधुर दूध देनेवाली गौमाता) उत्पन्न होती है। अमृत को धारण करनेवाली उस मधुकशा को सुपूजित करके सब प्रजाजन हृदयसे
आनन्दित होते हैं ॥ १ ॥

महत् पयो विश्वरूपमस्या: समुद्रस्य त्वोत रेत आहुः ।
यत एति मधुकशा रराणा तत् प्राणस्तदमृतं निविष्टम्॥२॥

इसका दूध ही महान् विश्वरूप है और इसे ही समुद्रका तेज़ कहते हैं। जहाँ से यह मधुकशा शब्द करती हुई जाती है, वह प्राण है, वह सर्वत्र प्रविष्ट अमृत है।। २ ।।

पश्यन्त्यस्याश्चरितं पृथिव्या पृथङ्नरो बहुधा मीमांसामानाः ।
अग्नेर्वातान्मधुकशा हि जज्ञे मरुतामुग्री नप्तिः ॥ ३॥

बहुत प्रकार से पृथक्-पृथक् विचार करनेवाले लोग इस पृथ्वी पर इसका चरित्र अवलोकन करते हैं। यह मधुकशा अग्नि और वायुसे उत्पन्न हुई है। यह मरुतों की उग्र पुत्री है।। ३ ।।

मातादित्यानां दुहिता वसूनां प्राणः प्रजानाममृतस्य नाभिः ।
हिरण्यवर्णा मधुकशा घृताची महान् भर्गश्चरति मर्येषु ॥ ४॥

यह आदित्यों की माता, वसुओं की दुहिता, प्रजाओं का प्राण और यह अमृत का केन्द्र है, सुवर्ण के समान वर्णवाली यह मधुकशा घृत का सिंचन करनेवाली है, यह मन्त्रो में महान् तेज का संचार करती है ।। ४ ।।

मधोः कशामजनयन्त देवास्तस्या गर्भो अभवद् विश्वरूपः ।
तं जातं तरुणं पिपर्ति माता स जातो विश्वा भुवनावि चष्टे॥५॥

इस मधुकशा (गौ) को देवोंने बनाया है, उसका यह विश्वरूप गर्भ हुआ है। उस जन्मे हुए तरुण को वही माता पालती है, वह होते ही सब भुवनों का निरीक्षण करता है॥ ५ ॥

कस्तं प्र वेद क उ तं चिकेत यो अस्या हृदः कलशः सोमधानो अक्षितः।
ब्रह्मा सुमेधाः सो अस्मिन् मदेत ॥६॥

कौन उसे जानता है, कौन उसका विचार करता है? इसके हृदय के पास जो सोमरस से भरपूर पूर्ण कलश विद्यमान है, इसमें वह उत्तम मेधावाला ब्रह्मा आनन्द करेगा ॥६॥

स तौ प्र वेद स उ तौ चिकेत यावस्याः स्तनौ सहस्रधारावक्षितौ।
ऊर्जी दुहाते अनपस्फुरन्तौ ।।७।।

वह उनको जानता है, वह उनका विचार करता है, जो इसके सहस्रधारायुक्त अक्षय स्तन हैं, वे अविचलित होते हुए बलवान् रस का दोहन करते हैं ।। ७ ।।

हिङ्कृरिक्रती बृहती वयोधा उच्चैर्घोषाभ्येति या व्रतम्।
त्रीन् घर्मानभि वावशाना मिमाति मायुं पयते पयोभिः॥ ८ ॥

जो हिंकार करने वाली, अन्न देने वाली, उच्च स्वर से पुकारने वाली व्रत के स्थान को प्राप्त होती है। तीनों यज्ञों को वशमें रखनेवाली सूर्य का मापन करती है और दूध की धाराओं से दूध देती है। ८॥

यामापीनामुपसीदन्त्यापः शाक्वरा वृषभा ये स्वराजः ।
ते वर्षन्ति ते वर्षयन्ति तद्विदे काममूर्जमापः॥ ९ ॥

जो वर्षासे भरनेवाले बैल तेजस्वी शक्तिशाली जल जिस पान करनेवाली के पास पहुँचते हैं। तत्त्वज्ञानी को यथेच्छ बल देनेवाले अन्नकी वे वृष्टि करते हैं, वे वृष्टि कराते हैं ॥ ९ ॥

स्तनयित्नुस्ते वाक् प्रजापते वृषा शुष्मं क्षिपसि भूम्यामधि।
अग्नेर्वातान्मधुकशा हि जज्ञे मरुतामुग्रा नप्तिः ॥ १०॥

हे प्रजापालक! तेरी वाणी गर्जना करनेवाला मेघ है, तू बलवान् होकर भूमि पर बल को फेंकता है। अग्नि और वायु से मधुकशा उत्पन्न हुई है, यह मरुतों की उग्र पुत्री है ॥ १० ॥

यथा सोमः प्रातःसवने अश्विनोर्भवति प्रियः।
एवा में अश्विना वर्च आत्मनि ध्रियताम् ॥ ११॥

जैसा सोमरस प्रातः सवन यज्ञ में अश्विनी देवोंको प्रिय होता है, हे अश्विदेवो! इस प्रकार मेरे आत्मा में तेज धारण करें ॥ ११ ॥

यथा सोमो द्वितीये सवन इन्द्राग्न्योर्भवति प्रियः।
एवा में इन्द्राग्नी वर्च आत्मनि ध्रियताम् ॥१२॥

जैसा सोमरस द्वितीयसवन माध्यन्दिन सवन यज्ञ में इन्द्र और अग्नि को प्रिय होता है, हे इन्द्र और अग्नि! इस प्रकार मेरे आत्मा में तेज धारण करें ॥ १२ ॥

यथा सोमस्तृतीये सवन ऋभूणां भवति प्रियः।
एवा मे ऋभवो वर्च आत्मनि ध्रियताम्॥१३॥

जैसा सोम तृतीयसवन सायं सवन यज्ञ में ऋभुओं को प्रिय होता हैं, हे ऋभुदेवो ! इस प्रकार मेरी आत्मा में तेज धारण करें ॥ १३॥

मधु जनिषीय मधुवंशिषीय।
पयस्वानग्न आगमं तं मा सं सृज वर्चसा ॥ १४॥

मिठास उत्पन्न करूंगा, मिठास प्राप्त करूं। हे अग्ने! दूध लेकर मैं आ गया हूँ, उससे तेज से संयुक्त करें ॥ १४ ॥

सं माग्ने वर्चसा सृज सं प्रजया समायुषा।
विद्युमें अस्य देवा इन्द्रो विद्यात् सह ऋषिभिः॥ १५॥

हे अग्ने ! आप मुझे तेज से, प्रजा से और आयु से संयुक्त करें। मुझे सब देव जानें, ऋषियों के साथ इन्द्र भी मुझे जानें ॥ १५ ॥

यथा मधु मधुकृतः सम्भरन्ति मधावधि।
एवा में अश्विना वर्च आत्मनि ध्रियताम् ॥ १६ ॥

जैसे मधुमक्खियाँ अपने मधु में मधु संचित करती हैं, हे अश्विदेवो! इस प्रकार मेरा ज्ञान, तेज, बल और वीर्य संचित हो, बढ़ता जाय ॥ १६ ॥

यथा मक्षा इदं मधु न्यञ्जन्ति मधावधि। एवा में अश्विना वर्चस्तेजो बलमोजश्च ध्रियताम्॥ १७॥

जैसी मधुमक्षिकाएँ इस मधुको अपने पूर्वसंचित मधुमें संगृहीत करती हैं, इस प्रकार हे अश्विदेवो! मेरा ज्ञान, तेज, बल और वीर्य संचित हो, बढ़े ।। १७ ।।

यद् गिरिषु पर्वतेषु गोष्वश्वेषु यन्मधु।
सुरायां सिच्यमानायां यत् तत्र मधु तन्मयि॥ १८॥

जैसा पहाड़ों और पर्वतों पर तथा गौओं और अश्वों में जो मधुरता है, सिंचित होनेवाले वृष्टि जल में उसमें जो मधु है; वह मुझमें हो ॥ १८ ॥

अश्विना सारघेण मा मधुनातं शुभस्पती।
यथा वर्चस्वतीं वाचमावदानि जनाँ अनु॥१९॥

हे शुभ के पालक अश्विदेवो! मधुमक्खियों के मधु से मुझे युक्त करें; जिससे मैं लोगों के प्रति तेजस्वी भाषण बोलूँ ॥ १९ ॥

स्तनयित्नुस्ते वाक् प्रजापते वृषा शुष्मं क्षिपसि भूम्यां दिवि।
तां पशव उप जीवन्ति सर्वे तेनो सेषमूर्ज पिपर्ति ॥ २०॥

हे प्रजापालक! तू बलवान् है और तेरी वाणी मेघगर्जना है, तू भूमिपर और द्युलोक में बल की वर्षा करता है, उस पर सब पशुओं की जीविका होती है और उससे वह अन्न और बलवर्धक रस की पूर्णता करती है ।। २०॥

पृथिवी दण्डोन्तरिक्षं गर्भो द्यौः कशा विद्युत् प्रकशो हिरण्ययो बिन्दुः ॥ २१ ॥

पृथिवी दण्ड है, अन्तरिक्ष मध्य भाग है, द्युलोक तन्तु हैं, बिजली उसके धागे हैं और सुवर्णमय बिन्दु हैं ॥ २१

यो वै कशायाः सप्त मधूनि वेद मधुमान् भवति।
ब्राह्मणश्च राजा च धेनुश्चानवांश्च व्रीहिश्च यवश्च मधु सप्तमम् ॥ २२ ॥

जो इस (मधु) कशा के सात मधु जानता हैं, वह मधुवाला होता है। ब्राह्मण और राजा, गाय और बैल, चावल और जौं तथा सातवाँ मधु है ॥ २२ ॥

मधुमान भवति मधुमदस्याहार्यं भवति।
मधुमतो लोकान् जयति य एवं वेद ॥ २३॥

जो यह जानता है, वह मधुवाला होता है, उसका सब संग्रह मधुयुक्त होता है और मीठे लोकोंको प्राप्त करता है। २३।।।

यद्वीधे स्तनयति प्रजापतिरेव तत् प्रजाभ्यः प्रादुर्भवति।
तस्मात् प्राचीनोपवीतस्तिष्ठे प्रजापतेऽनुमा बुध्यस्वेति ।
अन्वेनं प्रजा अनु प्रजापतिर्बुध्यते य एवं वेद ॥ २४॥

जो आकाशमें गर्जना होती है, प्रजापति ही वह प्रजाओं के लिये मानो प्रकट होता है। इसलिये दायें भाग में वस्त्र लेकर खड़ा होता हैं, हे प्रजापालक ईश्वर ! मेरा स्मरण रखो। जो यह जानता है, इसके अनुकूल प्रजाएँ होती हैं तथा इसको प्रजापति अनुकूलतापूर्वक स्मरण में रखता हैं।। २४ ।।।

कृषिसूक्त

[अथर्ववेद ३ । १७]

अथर्ववेद के तीसरे काण्डका १७वाँ सूक्त 'कृषिसूक्त' है। इस सूक्तके ऋषि 'विश्वामित्र तथा देवता 'सीता' हैं। इसमें मन्त्रद्रष्टा ऋषिने कृषि को सौभाग्य की वृद्धि कराने वाला बता कर इंद्र तथा सूर्य देव से कृषि की रक्षा करने की कामना की है।

सीरा युञ्जन्ति कवयो युगा वि तन्वते पृथक् ।
धीरा देवेषु सुम्नयौ ॥१॥

देवों में विश्वास करनेवाले विज्ञजन विशेष सुख प्राप्त करने के लिये भूमि को हलों से जोतते हैं और बैलों के कन्धों पर रखे जानेवाले जुओं को अलग करके रखते हैं। १ ।। ।

युनक्त सीरा वि युगा तनोत कृते योनौ वपतेह बीजम् ।
विराजः श्रुष्टिः सभरा असन्नो नेदीय इत्सृण्यः पक्वमा यवन्॥२॥

जुओं को फैलाकर हलों से जोड़ो और भूमि को जोतो। अच्छी प्रकार भूमि तैयार करके उसमें बीज बोओ। इस से अन्नकी उपज होगी, खूब धान्य पैदा होगा और पकने के बाद अन्न प्राप्त होगा ॥ २ ॥

लाङ्गलं पवीरवत्सुशीमं सोमसत्सरु।
उदिद्वपतु गामविं प्रस्थावद् रथवाहनं पीबरीं च प्रफर्म्यम् ॥ ३॥

हल में लोहे का कठोर फाल लगा हो, पकड़ने के लिये लकड़ी की मूठ हो, ताकि हल चलाते समय आराम रहे। यह हल ही गौ-बैल, भेड़-बकरी, घोड़ा घोड़ी, स्त्री-पुरुष आदि को उत्तम घास और धान्यादि देकर पुष्ट करता है ।। ३ ॥

इन्द्रः सीतां नि गृह्णातु तां पूषाभि रक्षतु।
सा नः पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां समाम् ॥ ४॥

इन्द्र वर्षा द्वारा हल से जोती गयी भूमि को सींचें और धान्य के पोषक सूर्य उसकी रक्षा करें। यह भूमि हमें प्रतिवर्ष उत्तम रस से युक्त धान्य देती रहे ॥ ४॥

शुनं सुफाला वि तुदन्तु भूमिं शुनं कीनाशा अनु यन्तु वाहान्।
शुनासीरा हविषा तोशमाना सुपिप्पला ओषधीः कर्तमस्मै॥५॥

हल के सुन्दर फाल भूमि की खुदाई करें, किसान बैलों के पीछे चलें । हमारे हवन से प्रसन्न हुए वायु एवं सूर्य इस कृषि से उत्तम फलवाली रसयुक्त ओषधियाँ दें।। ५ ।।

शुनं वाहाः शुनं नरः शुनं कृषतु लाङ्गलम् ।
शुनं वरत्राबध्यन्तां शुनमष्ट्रामुदिङ्गय॥ ६ ॥

बैल सुख से रहें, सब मनुष्य आनन्दित हों, उत्तम हल चलाकर आनन्द से कृषि की जाय। रस्सियाँ जहाँ जैसी बाँधनी चाहिये, वैसी बाँधी जायँ और आवश्यकता होने पर चाबुक ऊपर उठाया जाय ।। ६ ।।

शुनासीरेह स्म में जुषेथाम्।
यद्दिवि चक्रथुः पयस्तेनेमामुप सिञ्चतम् ॥ ७॥

वायु और सूर्य मेरे हवन को स्वीकार करें और जो जल आकाशमण्डल में है, उसकी वृष्टि से इस पृथिवी को सिंचित करें ॥ ७॥

सीते वन्दामहेत्वार्वाची सुभगे भव।
यथा नः सुमना असो यथा नः सुफला भुवः ॥८॥

भूमि भाग्य देनेवाली है, इसलिये हम इसका आदर करते हैं। यह भूमि हमें उत्तम धान्य देतीं रहे ॥ ८॥

घृतेन सीता मधुना समक्ता विश्वैर्देवैरनुमती मरुद्भिः।
सा नः सीते पयसाभ्याववृत्स्वोर्जस्वती घृतवत् पिन्वमाना॥९॥

जब भूमि घी और शहद से योग्य रीतिसे सिंचित होती है और जल, वायु आदि देवोंकी अनुकूलता उस को मिलती है, तब वह हमें उत्तम मधुर रसयुक्त धान्य और फल देती रहे ॥ ९ ॥

गृह महिमा सूक्त

[अथर्ववेद पैप्पलाद]

अथर्ववेदीय पैप्पलाद शाखा में वर्णित इस 'गृहमहिमासूक्त में मन्त्रद्रष्टा ऋषिने गृहमें निवास करनेवालों के लिये सुख, ऐश्वर्य तथा समृद्धिसम्पन्नताकी कामना की है।

गृहानैमि मनसा मोदमान ऊर्जं बिभ्रद् वः सुमतिः सुमेधाः।
अघोरेण चक्षुषा मित्रियेण गृहाणां पश्यन्पय उत्तरामि॥ १॥

शक्ति को पुष्ट करता हुआ, मतिमान् और मेधावी मैं मुदित मन से गृह में आता हूँ। कल्याणकारी तथा मैत्रीभाव से सम्पन्न चक्षु से इन गृहों को देखता हुआ, इनमें जो रस है, उसका ग्रहण करता हूँ॥ १ ॥

इमे गृहा मयोभुव ऊर्जस्वन्तः पयस्वन्तः ।
पूर्णा वामस्य तिष्ठन्तस्ते नो जानन्तु जानतः ॥२॥

ये घर सुख प्रदान करने वाले हैं, धान्य से भरपूर हैं, घी-दूध से सम्पन्न हैं। सब प्रकारके सौन्दर्य से युक्त ये घर हमारे साथ घनिष्ठता प्राप्त करें और हम इन्हें अच्छी तरह समझें ॥ २ ॥

सूनृतावन्तः सुभगा इरावन्तो हसामुदाः।
अक्षुध्या अतृष्यासो गृहा मास्मद् बिभीतन ॥ ३॥

जिन घरों में रहनेवाले परस्पर मधुर और शिष्ट सम्भाषण करते हैं, जिनमें सब तरह का सौभाग्य निवास करता है, जो प्रीतिभोजों से संयुक्त हैं, जिनमें सब हँसी-खुशी से रहते हैं, जहाँ कोई न भूखा है, न प्यासा है, उन घरों में कहीं से भय का संचार न हो ॥ ३॥

येषामध्येति प्रवसन् येषु सौमनसो बहुः।
गृहानुपह्वयाम यान् ते नो जानन्त्वायतः॥४॥

प्रवास में रहते हुए हमें जिनका ध्यान बराबर आता है, जिनमें सहृदयता की खान है, उन घरों का हम आवाहन करते हैं, वे बाहरसे आये हुए हमको जानें ॥४॥

उपहूता इह गाव उपहूता अजावयः।
अथो अन्नस्य कीलाल उपहूतो गृहेषु नः ॥ ५॥

हमारे इन घरों में दुधारु गौएँ हैं; इनमें भेड़, बकरी आदि पशु भी प्रचुर संख्या में हैं। अन्न को अमृततुल्य स्वादिष्ट बनाने वाले रस भी यहाँ हैं ॥ ५ ॥

उपहूता भूरिधनाः सखायः स्वादुसन्मुदः।
अरिष्टाः सर्वपूरुषा गृहा नः सन्तु सर्वदा ॥ ६॥

बहुत धनवाले मित्र इन घरों मेंआते हैं, हँसी-खुशी से हमारे साथ स्वादिष्ट भोजनों में सम्मिलित होते हैं। हे हमारे गृहो! तुममें बसनेवाले सब प्राणी सदा अरिष्ट अर्थात् रोगरहित और अक्षीण रहें, किसी प्रकार उनका ह्रास न हो ॥ ६॥

विवाहसूक्त

सोम सूर्या सूक्त

ऋग्वेद के दशम मण्डलका ८५वाँ सूक्त विवाह सूक्त कहलाता है। इसे सोम सूर्या सूक्त भी कहा जाता है। इस सूक्त की द्रष्टा ऋषिका सावित्री सूर्या हैं। इस सूक्तमें सूर्य, चन्द्र आदि देवोंकी भी स्तुतियाँ हैं। विवाहादि संस्कारोंमें इसके कई मन्त्रोंका पाठ होता है।

सत्येनोत्तभिता भूमिः सूर्येणोत्तभिता द्यौः।
ऋतेनादित्यास्तिष्ठन्ति दिवि सोमो अधि श्रितः ॥ १॥

देवों में सत्यरूप ब्रह्मा ने पृथिवी को आकाश में धारण किया है। सूर्य ने द्युलोक को धारण किया है। यज्ञ के द्वारा देव रहते हैं। द्युलोक में सोम ऊपर अवस्थित है ॥ १॥

सोमेनादित्या बलिनः सोमेन पृथिवी मही।
अथो नक्षत्राणामेषामुपस्थे सोम आहितः ॥ २ ॥

सोम से ही इन्द्रादि देव बलवान होते हैं। सोम के द्वारा ही पृथिवी महान् होती है और इन नक्षत्रों के बीच में सोम रखा गया है॥ २ ।।

सोमं मन्यते पपिवान् यत् संपिंषन्त्योषधिम्।
सोमं यं ब्रह्माणो विदुर्न तस्याश्नाति कश्चन॥ ३ ॥

जब सोमरूपी वनस्पति ओषधि को पीसते हैं, उस समय लोग मानते हैं कि उन्होंने सोमपान कर लिया। परंतु जिस सोमको ब्रह्म जाननेवाले ज्ञानीलोग जानते हैं, उसको दूसरा कोई भी अयाज्ञिक ग्रहण नहीं कर सकता ।। ३ ।।

आच्छद्विधानैर्गुपितो बार्हतैः सोम रक्षितः ।
ग्राव्णामिच्छृण्वन् तिष्ठसि ने ते अश्नाति पार्थिवः ।।४॥

हे सोम! तू गुप्त विधि-विधानोंसे रक्षित, बार्हतगणों[2] से संरक्षित है। तू पीसनेवाले पत्थरों का शब्द सुनता ही रहता है। तुझे पृथिवी का कोई भी सामान्य जन नहीं खा सकता ।।४।।

यत् त्वा देव प्रपिबन्ति तत आ प्यायसे पुनः ।
वायुः सोमस्य रक्षिता समानां मास आकृतिः ॥ ५॥

हे सोमदेव! जब लोग तेरा औषधिरूप में पान करते हैं, उस समय तू बार-बार पिया जाता है। वायु तुझ सोम की रक्षा करता है, जिस प्रकार महीने वर्ष की रक्षा करते हैं ॥ ५ ॥

रैभ्यासीदनुदेवी नाराशंसी । न्योचनी। सू
र्याया भद्रमिद्वासो गाथयैति परिष्कृतम् ॥ ६॥

रैभी[3] -विवाह के अनन्तर विवाहिता की सखी हुई थीं। मनुष्यों से गायी हुई ऋचाएँ उसकी दासी हुई थीं। सूर्या का आच्छादन वस्त्र अति सुन्दर था और वह गाथा से सुशोभित हुआ था। ६ ।।

चित्तिरा उपबर्हणं चक्षुरा अभ्यञ्जनम्।
द्यौर्भूमिः कोश आसीद् यदयात् सूर्या पतिम् ॥ ७॥

जिस समय सूर्या पति के गृह में गयी, उस समय उत्तम विचार ही चादर था। काजलयुक्त नेत्र थे। आकाश और पृथिवी ही उसके खजाने थे। ॥ ७॥

स्तोमा आसन् प्रतिधयः कुरीरं छन्द ओपशः ।
सूर्याया अश्विना वरा ऽग्निरासीत् पुरोगवः ॥८॥

स्तोत्र ही सूर्या के रथ-चक्र के डंडे थे, कुरीर नामक छन्द से रथ सुशोभित किया था, सूर्या के वर अश्विनीकुमार थे और अग्रगामी अग्नि था॥ ८॥

सोमो वधूयुरभवदश्विनास्तामुभा वरा।

---

[2] स्वान, भ्राज, अंधार्य आदि
[3] वेदमन्त्र

सूर्यां यत् पत्ये शंसन्तीं मनसा सवितादददात् ॥ ९ ॥

सोम वधू की कामना करनेवाला था, दोनों अश्विनीकुमार उसके पति स्वीकृत किये गये। जब पति की इच्छा करनेवाली सूर्या को सविता ने मन:पूर्वक प्रदान किया ।। ९ ।।

मनो अस्या अन आसीद् द्यौरासीदुत च्छदिः।
शुक्रावनड्वाहावास्तां यदयात् सूर्या गृहम् ॥ १०॥

जब सूर्या अपने पतिके गृह में गयी, तब उसका रथ उसका मन ही था, और आकाश ऊपर की छत थी। सूर्य और चन्द्र उसके रथवाहक हुए ॥१०॥

ऋक्सामाभ्यामभिहितौ गावौ ते सामनावितः।
श्रोत्रं ते चक्रे आस्तां दिवि पन्थाश्चराचरः ।। ११॥

हे सूर्ये देव! तेरे मनरूप रथ के ऋक् और साम के द्वारा वर्णित सूर्य चन्द्ररूप बैल शान्त रहते हुए एक-दूसरे के सहायक होकर चलते हैं। वे दोनों कान मन रूप रथ के दो चक्र हुए। रथ का चलने का मार्ग आकाश हुआ ॥ ११ ॥

शुची ते चक्रे यात्या व्यानो अक्ष आहतः।
अनो मनस्मयं सूर्या ऽऽरोहत् प्रयती पतिम् ॥ १२ ॥

जाते हुए तेरे रथ के दोनों चक्र कान हुए। रथ का धुरा वायु था। पति के गृह को जानेवाली सूर्या मनोमय रथ पर आरूढ हुई ॥१२॥

सूर्याया वहतुः प्रागात् सविता यमवासृजत् ।
अघासु हन्यन्ते गावो ऽर्जुन्योः पर्युह्यते ॥ १३॥

पतिगृह में जाते समय पिता सूर्य द्वारा प्रेम से दिया हुआ सूर्या का गौ आदि धन, पहले ही भेज दिया गया था। मघा नक्षत्र में विदाई में दी गयी गायों को डंडे से हाँका जाता है और फाल्गुनी नक्षत्र में कन्या को पति के घर पहुँचाया जाता है ॥१३॥

यदश्विना पृच्छमानावयातं त्रिचक्रेण वहतुं सूर्यायाः।
विश्वे देवा अनु तद्वामजानन् पुत्रः पितराववृणीत पूषा ॥ १४॥

हे अश्विद्वय! जिस समय तीन चक्र के रथ से सूर्या के विवाह की बात पूछने के लिये तुम आये थे, उस समय सारे देवों ने तुम्हारे कार्य को अनुमति दी थी और तुम्हारे पुत्र पूषा ने तुम्हें वरण किया था ।। १४ ।।

यदयातं शुभस्पती बरेयं सूर्यामुप।
कैकं चक्रं वामासीत् क्व देष्ट्राय तस्थथुः ॥ १५ ॥

हे अश्विद्वय ! जब तुम सूर्या से मिलने के लिये सविता के पास आये थे, तब तुम्हारे रथ का एक चक्र कहाँ था? और तुम परस्पर दान-आदान करने के लिये तैयार थे, तब तुम कहाँ रहते थे? ।। १५ ।।

द्वे ते चक्रे सूर्ये ब्रह्माण ऋतुथा विदुः ।
अथैकं चक्रं यद्गुहा तदद्धातय इद्विदुः ॥१६॥

हे सूर्ये! तेरे रथ के सूर्य-चन्द्रात्मक दो चक्र जो समयानुसार चलनेवाले प्रख्यात हैं, वे ब्राह्मण जानते हैं और एक तीसरा संवत्सरात्मक चक्र जो गुप्त था, उसको विद्वान् ही जानते हैं ॥ १६ ॥

सूर्यायँ देवेभ्यो मित्राय वरुणाय च।
ये भूतस्य प्रचेतस इदं तेभ्योऽकरं नमः ॥ १७ ।।

सूर्या, देव, मित्र, वरुण और जो भी सब प्राणिमात्रके शुभचिन्तक हितप्रद हैं, उन्हें मैं नमस्कार करता हूँ ॥१७॥ ।

पूर्वापरं चरतो माययैतौ शिशू क्रीळन्तौ परि यातो अध्वरम्।
विश्वान्यन्यो भुवनाभिचष्ट ऋतैरन्यो विदधज्जायते पुनः ॥ १८।।

ये दोनों शिशु-सूर्य और चन्द्र अपने तेज से पूर्व-पश्चिम में विचरण करते हैं और ये क्रीडा करते हुए यज्ञ में जाते हैं। इन दोनों में से एक सूर्य सर्व भुवनोंको देखता है और दूसरा-चन्द्र ऋतुओं, दो मासरूप कालविभागों का निर्माण करता हुआ बार-बार उत्पन्न होता है। १८ ।।

नवोनवो भवति जायमानो ऽल्ला केतुरुषसामेत्यग्रम्।
भागं देवेभ्यो वि दधात्यायन् प्र चन्द्रमास्तिरते दीर्घमायुः ॥१९॥

यह चन्द्र प्रतिदिन पुनः उत्पन्न होकर नया-नया ही होता है। वह दिनों का सूचक कृष्णपक्ष की रातों में प्रात:कालों के आगे ही आता है, अथवा दिनों का सूचक सूर्य प्रतिदिन नया होकर प्रात:काल सामने आता है। वह आता हुआ देवों कों यज्ञहवि भाग देता है । चन्द्रमा आकर आनन्द देता हुआ दीर्घायु करता है॥ १९ ॥

सुकिंशुकं शल्मलिं विश्वरूपं हिरण्यवर्ण सुवृतं सुचक्रम्।
आ रोह सूर्ये अमृतस्य लोकं स्योनं पत्ये वहतुं कृणुष्व॥ २०॥

हे सूर्ये! अच्छे किंशुक और शाल्मलि की लकड़ी से बने हुए नाना रूपवाले, सोने के रंगवाले, उत्तम वेष्टनों से युक्त, उत्तम चक्रों से युक्त इस रथपर चढ़ो और पति के लिये अमृत के लोक को सुखकारी
बनाओ ।। २० ||

उदीष्वतः पतिवती ह्येशघा विश्वावसुं नमसा गीभिरीळे।
अन्यामिच्छ पितृषदं व्यक्तां स ते भागो जनुषा तस्य विद्धि॥ २१॥

हे विश्वावसो! इस स्थानसे उठो; क्योंकि यह स्त्री पतिवाली हो गयी हैं। मैं विश्वावसु की नमस्कारों और वाणियों से स्तुति करता हूँ। तुम पितृकुल में रहनेवाली, दूसरी युवा लड़की की इच्छा करो, वह तुम्हारा भाग है, जन्म से उसको जानो ॥ २१ ॥

उदीतो विश्वावसो नमसेळामहे त्वा ।
अन्यामिच्छ प्रफर्म्य सं जायां पत्या सृज॥ २२॥

हे विश्वावसो ! इस स्थानसे उठो; तुम्हारी नमस्कार से स्तुति करते हैं और तुम दूसरी बृहद् नितम्बिनी की इच्छा करो और उस स्त्री को पति के साथ संयुक्त करो ।। २२ ।।

अनुक्षरा ऋजवः सन्तु पन्था येभिः सखायो यन्ति नो वरेयम्।
समर्यमा सं भगो नो निनीयात् सं जास्पत्यं सुयममस्तु देवाः ।। २३ ।।

सब मार्ग काँटों से रहित और सरल हों, जिनसे हमारे मित्र कन्या के घर के प्रति पहुँचते हैं और अर्यमा तथा भगदेव हमें वहाँ अच्छी तरह ले जायँ। हे देवो! ये पत्नी और पति अच्छे मिथुन-जोड़े हों। वर तथा वधू के घर जाने के मार्ग कंटकरहित और सरल हों। देवगण इस जोड़े को सुखी और समृद्ध करें ॥ २३ ॥

प्रत्वा मुञ्चामि वरुणस्य पाशाद् येन त्वाबधात् सविता सुशेवः।

ऋतस्य योनौ सुकृतस्य लोकेऽरिष्टां त्वा सह पत्या दधामि ॥ २४॥

तुझे मैं वरुण के बन्धनों से मुक्त करता हूँ, जिससे तुझे सेवा करनेयोग्य सविता ने बाँधा था। सदाचारी के घर में और सत्कर्म कर्ता के लोक में हिंसा के अयोग्य तुझको पति के साथ स्थापित करता हूँ ॥ २४ ॥

प्रेतो मुञ्चामि नामुतः सुबद्धाममुतस्करम्।
यथेयमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्री सुभगासति॥ २५ ।।

यहाँ –पितृकुल से तुझे मुक्त करता हूँ, वहाँ -पतिकुल से नहीं। वहाँ से तुझे अच्छी प्रकार बाँधता हूँ। हे दाता इन्द्र ! जिससे यह वधू उत्तम पुत्रवाली और उत्तम भाग्यसे युक्त हो ॥ २५ ॥

पूषा त्वेतो नयतु हस्तगृह्याऽश्विना त्वा प्र वहतां रथेन।
गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासो वशिनी त्वं विदथमा वदासि ॥ २६॥

पूषा तुझे यहाँ से हाथ पकड़कर चलायें, आगे अश्विदेव तुझे रथ में बिठलाकर पहुँचायें। अपने पति के घरको जा। वहाँ तू घर की स्वामिनी और सबको वशमें रखनेवाली हो। वहाँ तू उत्तम विवेक का भाषण कर ।। २६ ।।

इह प्रियं प्रजया ते समृध्यतामस्मिन् गृहे गार्हपत्याय जागृहि।
एना पत्या तन्वं सं सृजस्वाऽधा जिव्री विदथमा वदाथः ।। २७ ।।

यहाँ तेरी सन्तान के साथ प्रिय की वृद्धि हो, और तू इस घर में गृहस्थधर्म के लिये जागती रह। इस पति के साथ अपने शरीर को संयुक्त कर और वृद्ध होनेपर तुम दोनों उत्तम उपदेश करो ॥ २७ ॥

नीललोहितं भवति कृत्यासक्तिर्व्यज्यते।
एधन्ते अस्या ज्ञातयः पतिर्बन्धेषु बध्यते ॥ २८॥

जब यह नीली और लाल बनती है अर्थात् क्रोधयुक्त होती है, तब इसकी विनाशक इच्छा बढ़ती है, इसकी जाति के मनुष्य बढ़ते हैं और पति बन्धन में बाँधा जाता है॥ २८ ॥

परा देहि शामुल्यं ब्रह्मभ्यो वि भजा वसु ।

कृत्यैषा पढ़ती भूत्व्या जाया विशते पतिम् ॥ २९॥

शरीर के मल से मलिन वस्त्र का त्याग करो। प्रायश्चित्तार्थ ब्राह्मणों को धन दो। यह कृत्या चली गयी है और अब पत्नी होकर पति में सम्मिलित हो रही है॥ २९ ॥

अश्रीरा तनूर्भवति रुशती पापयामुया।
पतिर्यद्वध्वो३ वाससा स्वमङ्गमभिधित्सते ॥ ३०॥

यदि पति वधू के वस्त्र से अपने शरीर को ढकने को चाहे, तो पति को शरीर श्रीरहित, रोगादि से दूषित हो जाता है। यह वधू पापयुक्त शरीर से दुःख और कष्ट से पीड़ा देनेवाली होती है ।। ३० ॥

ये वध्वश्चन्द्रं वहतुं यक्ष्मा यन्ति जनादनु।
पुनस्तान् यज्ञिया देवा नयन्तु यत आगताः ॥ ३१ ॥

वधू से अथवा वधू के सम्बन्धियों से जो व्याधियाँ तेजःपुंज वर के शरीर को प्राप्त होती हैं, यज्ञार्ह इन्द्रादि देव उनको उनके स्थान पर फिर लौटा दें, जहाँ से वे पुनः आ जाती हैं॥३१॥

मा विदन् परिपन्थिनो ये आसीदन्ति दम्पती।
सुगेभिर्दुर्गमतीतामपद्रान्त्वरातयः ।। ३२।।

जो विरोधी शत्रु रूप होकर पति-पत्नी दोनों के पास आते हैं, वह न प्राप्त हों। वे सुगम मार्गों से दुर्गम देशमें जायँ। शत्रुलोग दूर भाग जायँ। ३२ ।।

सुमङ्गलीरियं वधूरिमा समेत पश्यत।
सौभाग्यमस्यै दत्त्वायाऽथास्तं वि परेतन।। ३३॥

यह वधू शोभन कल्याणवाली है। समस्त आशीर्वादकर्ता आयें और इसे देखें । इस विवाहिता को उत्तम सौभाग्यवती होने का आशीर्वाद देकर अनन्तर सब अपने घर चले जाएँ। ३३ ।।

तृष्टमेतत् कटुकमेतदपाष्ठवद्विषवन्नैतदत्तवे।
सूर्यो यो ब्रह्मा विद्यात् स इद्वाधूयमर्हति ॥ ३४॥

यह वस्त्र दाहक, अग्राह्य, मलिन और विष के समान घातक है। यह व्यवहार के योग्य नहीं हैं। जो ब्राह्मण सूर्या को अच्छी प्रकार जानता है, वह ही वधू के वस्त्र को प्राप्त कर सकता है।॥ ३४ ॥

आशसने विशसनमथो अधिविकर्तनम्।
सूर्यायाः पश्य रूपाणि तानि ब्रह्मा तु शुन्धति ॥ ३५ ॥

आशसन [4], विशसन[5], और अधिविकर्तन[6], इस प्रकार के वस्त्र पहनी हुई सूर्या के जो रूप होते हैं, उन्हें तू देख। उनको वेदज्ञ ब्राह्मण ही शुद्ध करता है ॥ ३५ ।।।

गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः।
भगो अर्यमा सविता पुरंधर्महृं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः ॥ ३६ ।।

हे वधू ! तेरा हाथ मैं सौभाग्यवृद्धि के लिये ग्रहण करता हूँ। जिस कारण से तू मुझ पति के साथ वृद्धावस्थापर्यन्त पहुँचना, भग, अर्यमा, सविता और पुरंधिः देवों ने तुझे मुझे गृहस्थधर्म का पालन करने के लिये प्रदान किया है ।। ३६॥

तां पूषञ्छिवतमामेरयस्व यस्यां बीजं मनुष्या३ वपन्ति।
या न ऊ उशती विश्रयाते यस्यामुशन्तः प्रहराम शेपम्॥ ३७॥

हे पूषा! जिस स्त्री के गर्भ में मनुष्य रेतरूप बीज बोते हैं, जो हम पुरुषों की कामना करती हुई दोनों जाँघों का आश्रय लेती है। अत्यन्त कल्याणमय गुणोंवाली उसको तू प्रेरित कर ॥ ३७ ।।

तुभ्यमग्ने पर्यवहन्सू र्या वहतुना सह।
पुनः पतिभ्यो जायां दा अग्ने प्रजया सह ॥ ३८ ॥

हे अग्नि! गन्धर्वो ने तुझे प्रथम दहेज आदि सहित सूर्या को दिया और तुमने दहेज के साथ उसे सोम को अर्पण किया और तू हम पति को उत्तम सन्तान सहित स्त्री प्रदान कर, अर्थात् हम विवाहितों को उत्तम सन्तान से सम्पन्न कर ॥ ३८ ॥

पुनः पलीमग्निरदादायुषा सह वर्चसा।

---

4 झालर
5 शिरोभूषण
6 तीन भागवाला वस्त्र

दीर्घायुरस्या यः पतिर्जीवाति शरदः शतम् ॥ ३९॥

अग्निने पुनः दीर्घ आयु और तेज, कान्तिसहित पत्नीको दिया। इसका जो पति है, वह दीर्घायु होकर सौ वर्षतक जिये ॥ ३९ ॥

सोमः प्रथमो विविदे गन्धर्वो विविद उत्तरः।
तृतीयो अग्निष्टे पतिस्तुरीयस्ते मनुष्यजाः ॥ ४० ॥

सोमने सबसे प्रथम तुम्हें पत्नीरूपसे प्राप्त किया, उसके अनन्तर गन्धर्वने प्राप्त किया। तीसरा तेरा पति अग्नि है । चौथा मनुष्यवंशज तेरा पति है ॥४०॥

सोमो ददद्गन्धर्वाय गन्धर्वो दददग्नये।
रयिं च पुत्राँश्चादादग्निर्मह्यमथो इमाम्॥४१॥

सोम ने उस स्त्री को गन्धर्व को दिया। गन्धर्व ने अग्नि को दिया। अनन्तर इसको अग्नि ऐश्वर्य और सन्तति के साथ मुझे प्रदान करता है॥ ४१ ।।

इहैव स्तं मा वि यौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम्।
क्रीळन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वे गृहे॥४२॥

हे वर और वधू ! तुम दोनों यहीं रहो। कभी परस्पर पृथक् नहीं होओ। सम्पूर्ण आयु को विशेष रूपसे प्राप्त करो। अपने गृह में रहकर पुत्र-पौत्रों के साथ आमोद, आनन्द और उसके साथ खेलते हुए रहो ॥ ४२ ॥

आ नः प्रजां जनयतु प्रजापतिराजरसाय समनक्त्वर्यमा।
अदुर्मङ्गलीः पतिलोकमा विश शं नो भव द्विपदेशं चतुष्पदे॥४३॥

प्रजापति हमें उत्तम सन्तति दें। अर्यमा वृद्धावस्थापर्यन्त हमारी रक्षा करें। मंगलमयी होकर पतिके गृहमें प्रवेश कर । तू हमारे आप्त बन्धुओंके लिये तथा पशुओंके लिये सुखकारिणी हो । ४३ ।।

अघोरचक्षुरपतिघ्न्येधि शिवा पशुभ्यः सुमनाः सुवर्चाः ।
वीरसूर्देवकामा स्योना शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे॥४४॥

हे वधू! तुम शान्त दृष्टिवाली और पतिको दुःख न देनेवाली होओ। पशुओं के लिये हितकारी, उत्तम शुभ विचारयुक्त मनवाली, तेजस्वी, वीरप्रसविनी और देवों की भक्ति करनेवाली सुखकारी होओ। हमारे द्विपादों के लिये और चतुष्पादों के लिये कल्याणमयी होओ।। ४४ ॥

इमां त्वमिन्द्र मीढ्वः सुपुत्रां सुभगां कृणु।
दशास्यां पुत्राना धेहि पतिमेकादशं कृधि॥ ४५ ॥

हे इन्द्र ! तू इसको उत्तम पुत्रोंसे युक्त और सौभाग्यशाली कर। इसको दस पुत्र प्रदान कर और पति को लेकर इसे ग्यारह व्यक्ति वाली बना ॥ ४५ ॥

सम्राज्ञी श्वशुरे भव सम्राज्ञी श्वश्वां भव।
ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधि देवृषु ॥४६॥

हे वधू ! तू श्वसुर, सास, ननद और देवरोंकी साम्राज्ञी–महारानी के सदृश होओ, सबके ऊपर प्रभुत्व कर ॥ ४६॥

समञ्जन्तु विश्वे देवाः समापो हृदयानि नौ।
सं मातरिश्वा सं धाता समु देष्ट्री दधातु नौ॥४७॥

समस्त देव हमारे दोनोंके हृदयोंको परस्पर मिला दें। जल, वायु, धाता और सरस्वती हम दोनोंको संयुक्त करें ॥ ४७ ।।

संकलनकर्ता:

श्री मनीष त्यागी

संस्थापक एवं अध्यक्ष

श्री हिंदू धर्म वैदिक एजुकेशन फाउंडेशन

www.shdvef.com

।।ॐ नमो भगवते वासुदेवाय:।।